।। जनेऊ ।।

कीर्ति दीक्षित

कीर्ति दीक्षित

Dadicated to
Aacharya Chandra Shekhar Shastri
Smt. Rampyari Trivedi

॥ 1 ॥

प्रकृति भी जात बिरादरी, अमीर गरीब का चश्मा ओढ़े अपनी सेवाएं देती तो क्या होता? सूर्य की कोपाग्नि को निगलते-निगलते माटी के चहारदीवारी के बीचोंबीच खड़ा नीम का पेड़ भी पीला पड़ चला था अपने जीर्णपल्लवों को उम्र से पहले बूढ़ा होते देख मुँह औंधाये खड़ा रहता किन्तु अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं हुआ था अपनी छाया से बखरी को सूरज के कोप से ढांके रखता। कड़वा ही सही लेकिन गर्मी की झुलसन को मीठी छाया से शांत कर दिया करता था, उसके सामने दो छपरे और पीछे की बखरी में कुंईया जिसे चारों ओर से पपीते के पेड़ों ने छुपा रखा था।

छपरे के चारों ओर सब्जी के लिए हरे पत्ते उगाये गये थे लेकिन ये भी अधसूखे तेज गरमी में झुलसे से हो चले थे। सिन्धु उन्हें खूब संवारा करती थी, जैसे तैसे पानी पिला-पिलाकर आधा अधूरा जीवित रखा था, दो ज्वार की तरकारी तो कर ही लिया करती, चौके से जब भी अन्न विमुख होता तो यही पत्ते तो बच्चों की भूख का मरहम बनते थे। सबेरे से सिन्धु पालक के हरे-हरे पत्ते तलाशने में लगी थी,

बण्डी गले में डालते हुए गोकरन ने कहा -

सिन्धु! हम जा रहे, अथये लौ लौट हैं,
ठेकेदार के इते जै हैं,
शायद कछु काम मिल जाए।

उम्र की सैंतीसवें साल में था गोकरन, मजदूरी ने शरीर में गांठों का अच्छा समूह बना दिया था, हड्डियों से चिपके मांस की मजबूती तो दिखाई पड़ती थी, लेकिन पीठ से चिपका पेट फेफड़ों के पूरे आकार को प्रदर्शित करता था।

सिन्धु ने आँखों से ही स्वीकृति दी और छपरे के बाहर बखरी में उगी पालक तोड़ने में व्यस्त हो गई। समय ने हृदयों के मध्य एक गभीर निर्वात पैदा कर दिया था; कहना सुनना मात्र औपचारिक सा था,

दोनों एक दूसरे की आँखों से ही सब कुछ पढ़ने लगे थे। उम्र तो अभी तीस की ही थी लेकिन सिन्धु की गौरवर्णी काया यथार्थ और गरीबी की आँच से मलिन हो चली थी, उम्र को भी जैसे अन्न का वियोग लग गया हो।

गोकरन निकल गया, उसके पीठ फेरते ही अपने भाल के सैन्दुर पर गौरवान्वित होती, लाल सूजी सी सिन्धु की आँखें भी गोकरन के पीछे चल पड़ी। जहाँ तक जा सकती पति के साथ दौड़ आई, देखते ही देखते गोकरन ओझल हो गया।

सूरज सिर पर चढ़ आया था। जेठ का तपता दिन, ऊपर से नौतपा, सूरज के ताप से लड़ने के लिए पेड़ों में हरियाली ही न बची थी, सूखी शाखों से रगड़ खाकर सूर्य की प्रचण्ड किरणें और अधिक जलती प्रतीत होती थीं; इस तीव्र ज्वलन से धरती भी लाल हो रही थी। गाँव की कच्ची पगडण्डी पर धूल यहाँ से वहाँ उड़ कर एक मायाजाल सा बनाती फिर रही थी, गर्म हवा के थपेड़े इस कर्म में उसके सहभागी बने हुए थे। आकाश में सूर्यदेव बेरहम हुए जा रहे थे और नीचे जीवन। इस बरस भी इन्द्रदेव की कृपा नहीं हुई, पूरे गाँव में हरियाली के नाम पे चन्द कंटीली झाड़ियों के अतिरिक्त कुछ न दिखाई देता था।

सर पे पैबन्दी गमछा, मटमैली धोती और शरीर पर सफेद अधफटी बण्डी, ग्रामीण मजदूर की इससे अधिक वेशभूषा क्या हो सकती है, व्यथाओं की संज्ञा बन चुका गोकरन का पिछले दस दिनों से कहीं ठिकाना न पड़ा था। रोज कमाने खाने वाला गरीब, दस दिन तक काम से महरूम रहे तो चूल्हे भी मुँह फेर लिया करते हैं। गरीबी के लिए अन्न का बन्दोबस्त करना आसमान में थिगरिया लगाने से कम थोड़े ही होता है। गोकरन मजूरी की तलाश में रोज घर से निकलता और फिर हाथ रगड़ते लौट आता, आज भी इसी आशा को लिए निकला था।

गरम थपेड़े मारती लू सांय सांय करके देह को जितने बार छूती उतने बार झुलसा जाती। गोकरन घर से निकलकर महली के घर की ओर जाने वाली पगडण्डी पर पहुँच गया था, हालांकि अभी अधिक

दूर नहीं निकला था लेकिन उसके गौरवर्णी गठीले शरीर पर पसीने की बूँदे पारे के समान ढुलकती नृत्य करती सी प्रतीत होती थीं। रक्तसंचरण जैसे त्वचा के ऊपर होने लगा हो, किन्तु दिवाकर की ज्वलन भरी प्रखरता भी उसके स्वाभिमानी मुख की रक्ताभा मलिन न करने पाती थी। सूरज की तपिश जैसे जैसे बढ़ती वैसे वैसे उसके शरीर का खून ही जैसे पसीना बन के बहा जा रहा था लेकिन कदमों को ठिठकने की आज्ञा न थी।

राम राम महाराज ...... !!!

ब्राह्मण था इसलिए गाँव के लोग उसको महाराज कहकर सम्बोधित किया करते थे और ग्रामीण परिवेश में आते जाते *राम...राम* कहके अभिवादन करने की परम्परा होती है सो मार्ग में जो भी मिलता गोकरन को रामनामी अभिवादन करता, गोकरन भी उसी तरह प्रत्युत्तर देता चला जा रहा था; हालांकि उसकी स्थिति किसी से छिपी न थी लेकिन गोकरन के स्वाभिमान ने कभी किसी को अपने मुँह से अपनी स्थिति का भान न होने दिया था। यद्यपि, कभी अधखुले कपड़े और कभी आँतों से चिपका उसका पेट, उसकी हालत की चुगली कर ही दिया करते थे। सात दिनों से घर में न अन्न का दाना था, न काम!

स्वयं से द्वन्द्व करता गोकरन बढ़ रहा था कब तक बच्चों को आशा के आसमान से टांगे रहें? कब तक अन्न के बिना कुदई, और पत्तन पे बच्चन खें जिन्दा राखें? कब लौ भूंखन मारों? ठेकेदार शायद आज कछु काम दै दे तो भलो हो जाए, जो काम न मिलो तो का मुँह लै कें लौटों घरे!'

मन से संवाद करता हुआ गोकरन महली ठेकेदार के पास पहुँच गया। ठेकेदार गाँव के पुस्तैनी प्रधान सुबीते सिंह का सुपुत्र था, जो अब सांसद थे और महली सिंह, प्रधान था। कहने को बड़े मुखिया उसे सपूत कहा करते थे लेकिन कपूत में क्या गुण होंगे जो उस सपूत में थे। शराब पीकर गाँव वालों को मारना पीटना, बन्दूक के दम पर किसी को भी उठा ले जाना, जुआ, सूदखोरी जैसे तमाम सद्‌गुण उस सपूत में मौजूद

थे। गाँव वालों को डरा धमका कर तीसरी बार प्रधान बन गया था।

पिता की नेतागिरी का फायदा उठाकर तमाम ठेके भी अपने नाम करा लिया करता और काम के नाम पर सरकारी पैसे का एक हिस्सा भी खर्च नहीं किया जाता, गाँव के पुस्तैनी कुएं भी मरम्मत के अभाव में अपने दुर्भाग्य पर मुँह औंधाए मर रहे थे। हाँ कागजों पर काम बिल्कुल दुरुस्त रहता था।

महली कद से कुछ छोटा था, अमीरों की देह की भांति उसकी देह भी चमकदार, आँखों में और शरीर में शराब एवं मेवों की मिश्रित सूजन दिखाई पड़ती थी। उम्र में गोकरन के लगभग ही था लेकिन एक ओर जीवन की व्यथाओं के कटावों से भरा गोकरन का रूखा मुख दूसरी और महली! खैर! धन का रौब तो इन्सान को चमकदार बना ही दिया करता है।

गोकरन और महली ठेकेदार आगे पीछे कक्षाओं में ही तो पढ़ते थे गोकरन अव्वल आता वहीं महली कभी जीरो से ऊपर उठा ही नहीं था। स्कूल तो बस अपना रौब जमाने जाया करता था। लेकिन विडम्बनाओं पर कभी किसी की कैंची चली है क्या? और सरस्वती लक्ष्मी का बैर तो जगजाहिर है।

गुजरे समय की गाथाओं को मस्तिष्क में जिन्दा करता गोकरन ठेकेदार की कोठी पर उसके सम्मुख आ खड़ा हुआ।

बरामदे में आराम-कुर्सी पर सफेद कुर्ता पायजामा पहने, गले में मोटी चमचमाती सोने की जंजीर हाथ में लगभग बीस तोले का कड़ा और रंग-बिरंगी अंगूठियों से भरा हाथ मानो शुभ्र आसमान पर सूरज चाँद तारे एकसाथ चमक रहे हों, आँखों पर चढ़े काले चश्मे के भीतर से महली ठेकेदार ने दूर से आते गोकरन को देख लिया था।

महली दांत किटकिटाकर बुदबुदाते हुए -

'आ गओ ससुर बम्हना! काम मांगन........
भूखन मर हैं ससुर लेकिन अकड़ न छोड़ हैं,

इन्हें तो ऐसई मरो चाहिए, आउन दो दिखत हों।'

गोकरन – *'राम...राम महली ठेकेदार!'*

सिगरेट के धुआं फूंकते हुए महली ठेकेदार ने काला चश्मा उतारकर दम्भी दृष्टि से गोकरन को घूरते हुए कहा –

'आओ गोकरन महाराज! का हालचाल हैं?'

गोकरन – *'अब का कहों सब तो जानत हो,*
ऐऊ साल सूखा परो है,
कहूँ काम लगवा देओ तो चूल्हो बर जाबे,
सात दिनां सें घर में अन्न को दानो नईंया।'

महली आलस से ऐंठते हुए –
'अरे! का कहत हो महाराज काम कहाँ धरो,
सरकार पुराने काम को तो पैसा दै नई रई,
नओ काम कहाँ से दिबा दें,
घर में खरचा चलाबो मुश्किल परो है।
तुम तो जानत हो महाराज ईशुर की कारस्तानी
कोऊ सें लुकी तो रहत नईयां,
लग्घर चार बरस सें सूखा पर रओ,
जमीनें उटकी डरीं।
बो तो बाप दादा ने कमा खें न धरो होतो
तो भूंखन मरत होते।'

गोकरन –

'लेओ, बाबू तुमाए एमपी..... ठेकेदार तुम....
प्रधान तुम और कहत भूखन मरें से बचे हो,
अरे तुम जैसे आदमी भूंखन मरन लगे तो
हम औरन खां तो मरई जाओ चहिये।'

महली ने कुत्सित और ईर्ष्या से भरा उन्मुक्त ठहाका लगाकर कहा –

काए कौन इते कुबेर को खजानो गड़ो महाराज,
हमऊं येई गाँव में रहत।

गोकरन ने संवाद को अधिक न बढ़ाते हुए फिर अपने उसी प्रश्न को दोहराया–

'कछु काम मिले तो दिबा देओ!'

मुँह में दूसरा पान ठूंसते हुए महली ने बस *'हूँ दिखत हैं'* कहा और चुप हो गया।

कुछ देर महली के अग्रिम उत्तर आशा में गोकरन उसकी ओर टकटकी लगाए देखता रहा, चेहरे को पढ़ने की कोशिश करता रहा लेकिन महली का भावहीन घमण्ड से ऐंठा चेहरा गोकरन के लिए काफी था।

गोकरन – *'तना पानी पीबा देओ सो चलों,*
बहुतई कर्‌रो घाम है।'

महली – *'हओ काए खिब पीओ ऊ लगो*
हैण्डपम्प सो पी लेओ, लोटा महीं धरो।'

गोकरन ने उठकर हैण्डपम्प चलाया, चररररररररर......चैओं चैओं..... करते हैण्डपम्प से लगभग पांच मिनट बाद पानी की दुर्बल कुपोषित सी धार निकली, लोटा भर गया, गट गट गट गोकरन ने पूरा लोटा पानी गले के नीचे उतार लिया, प्यासे कण्ठ को तो राहत मिली ही भूखे पेट को भी कुछ देर की शान्ति मिल गई।

गोकरन – *'राम...राम ठेकेदार चलत हों,*
दिखें रइयो कहूँ लग जाबे काम
तो बड़ो अच्छो हो जै है।'

महली ने भी एक हाथ ऊपर उठाकर अलसाया सा उत्तर दिया,

हओ महाराज!

गोकरन फिर तपती मिट्टी के रास्तों पर आगे चल तो दिया, लेकिन ठेकेदार के जवाब ने उसकी आत्मा को कंपा के रख दिया था,

आखिर अब घर जाकर क्या कहेगा, किस मुँह से आश्वासन देगा। घर जाने की हिम्मत न हो रही थी, क्या करे, क्या न करे?

दोपहर की चटकती धूप की तपिश में नहाई हवा आग सी लग रही थी, लेकिन जब भीतर ज्वालामुखी धधक रहा हो तो ये लपट भी शीतल ही थी।

मार्ग में ही पीपल का पेड़ दिखा तो कुछ देर ठहरकर पूरे वृक्ष को ऊपर से नीचे निहारता रहा चूँकि ऐसी मान्यता है कि पीपल में ब्रह्मा का वास होता है इसलिये गोकरन ने पीपल के पैर छुए और बोला, *'हे बरम देव क्षमा करियो'* दोनों हाथों से कान पकड़े और पीपल की छाया में खुद को टिका दिया।

अपने माथे पे दोनों हाथों को धरे बैठा तो था अपने को आराम देने के लिए, लेकिन बार-बार मस्तिष्क के आंगन में बच्चे और सिन्धु उसकी ओर आशा लगाए ताकने लगते, वो भूख से निढाल चेहरे उसकी आँखों पर उजाले से तैर रहे थे, बार-बार वो उनकी आँखों को पढ़ने की कोशिश करता लेकिन सिन्धु और बच्चों के प्रश्नवाचक चेहरे उसे कचोटे डाल रहे थे, कभी अपना सिर पीटता और कभी हाथ जमीन पर दे मारता।

'हे ईशुर हमाये पापन की सजा
लरका बच्चन खें काए देत, हमें उठा लो।'

जी तो चाहा दहाड़ें मार-मारकर रो ले, कम से कम जी तो हल्का हो जाता लेकिन आदमी को इतना भी अधिकार तो नहीं दिया भगवान ने।

तभी वहाँ से बड्डे महाराज गुजरे। बड्डे महाराज पुरोहित हैं, पूरा गाँव उन्हीं से ही पूजा पाठ, सुगरी-स्यात सभी धार्मिक कार्यों की पूछजोख किया करता है। सभी उन्हें बड्डे महाराज कहकर बुलाया करते हैं। उम्र कुछ सत्तर बरस, छह फुटिया लम्बी कद काठी, गौर वर्ण, चेहरे पर सूर्य सी लालिमा और सिर पर निरे चाँदी से बाल, ऐसे लगते थे मानो उनके मुख पे सूर्य चन्द्रमा एक साथ बिराजते हों, उम्र को लाठी

के सहारे पर डाले हुए, भकभकी धोती और कांधे पर मोटा जनेऊ, रोली चंदन से सुशोभित भाल और सिर पर सूरज के ताप को रोकने के लिए बंधा गमछा। एक बाम्हन और किसान की मिश्रित कल्पना का जीता जागता रूप।

गोकरन को मस्तक पर हाथ धरे बैठे देखकर अपने लड़खड़ाते स्वर में बोले –

'रे गोकरन..... इते मूड़ पे हाथ धरें काए बैठो रे,
ऐसें बैठबो साजो नईं होत।'

गोकरन ने हाथ बढ़ाकर उनके पाँव छुए और चुपचाप बैठा रहा, बगल में पड़े बड़े टीले पर बड्डे महाराज भी लम्बी सांस भरते हुए बैठ गए और गमछे में चेहरे का पसीना लपेटते हुए बड्डे महाराज ने प्रश्न किया –

'का हो गओ, ऐसें काए बैठो,
काम नईं मिलो आजऊं कहूँ का?'

गोकरन – *नईं मिलो दद्दा!*

गोकरन के पिता के बड़े भाई जैसे थे बड्डे महाराज इसलिए पूरे गाँव में गोकरन ही उन्हें दद्दा कहकर बुलाया करता था।

गोकरन वैसे ही माथे पर हाथ धरे करम पीटता धरती को निहारता हुआ बोला –

'का करों दद्दा कछु समझ नईं आ रओ,
तुमई कछु बताओ?

बड्डे महाराज अपनी बण्डी की जेब से चुनहाटु निकालकर तम्बाखू रगड़ते हुए बोले –

'दिख ऐसें करम पे हाथ धरकें न बैठ कुलच्छ होत।'

किस्मत की उष्णता को शब्दों में ढालते हुए गोकरन ने प्रत्युत्तर किया –

'येई करम तो बैरी भओ है।'

आवाज रोष से कुछ ऊंची तो हुई लेकिन आँखों के आँसू जैसे आवाज में तैरकर बोल रहे थे।

बड्डे महाराज ने गोकरन के हाथ पे तम्बाखू धरते हुए अपने होंठ दबाकर कहा –

'दिख गोकरन!
हमाए तुमाए लाने तो आज कोऊ सहाय नईयां
और करम का, इंसान के लानें तो जो लौ
अन्न मुँह के भीतर नईं टरो तौ लौ प्यारो होत,
जैसई गरे सें टरो सो,
इंसान तो ओई अन्न को दुश्मन हो जात,
तो करम की तो चर्चा का करने।
तैने बाप की कही करी होती तो
आज जा दसा न होती
जो तो कहो बखरी बचाएं राखी,
न तो सोच का दशा होती
ऐई सें इतनई सबुर कर लो कि
जो कछु है उतनई बहुत है।
अब जो गलती भई है सो भोगने तो आ है,
अपनी जरन सें जो कोऊ बिलग भओ
उको का होत तोसें बेहतर को जान है।'

बड्डे महाराज की बातें गोकरन के हृदय में तीर के समान चुभ रहीं थीं लेकिन वह निर्निमेष हो बस सुने जा रहा था।

गोकरन–

'सब जानत हों दद्दा! लेकिन अब का करों
समय खें पछाऊँ तो टार नईं सकत,
बिधना ने लिखी हती सो बुद्धि भ्रष्ट हो गई ती।
अब लरका बच्चन को मुँह दिखत तो

पऊआ भरो खून जर जात
और सिन्धु तुमाई बहू खें का कहों
बा तो कभऊँ उफ तक नईं करत
लेकिन जब घरे जात तो
आशा भरी आँखें लंएं देहरी पै बैठी दिखात।
अपनो सबुर तो कर लें,
बाल बच्चन सैं कैसें कहों की सबुर करो,
तन-तन से बच्चन खें का कहों कि
बाप की करतूतन के मारे भूखन मरो,
कभऊं तो लगत प्रान दे दिऊं।'

बड्डे महाराज -

'हट्ट!
ऐसी बातें नईं करीं जातीं बेटा,
रामायन कहत है,-
'धीरज धरम मित्र अरु नारी।
आपत्काल परखिये चारी ॥'
सिन्धु बहुतई हिम्मतिन है,
सो उकी तैं चिन्ता न कर।
रही लरका बच्चन की बात सो
उनके लानें धीरज धर.....
बिधाता सब भलो कर है,
करम लिखो कोऊ नईं टार सकत,
बस धीरज बनाए रख,
येई बड़ो मान समझ ले,
'हारिए न हिम्मत बिसारिये न राम'।

गोकरन -

दद्दा! मान को स्वांग रच-रच
कब तक जीएं,

हमाए तुमाए मान को मर्दन करें बाले
कहूँ और से नईं आउत।
हम तो भाग्य के दुखड़ा रोबे के लानें
और अपनी अवनत दशा पर
बिलखबे के लानें बनाए गए हैं,
सो बिलख रहे.......
आत्मा खैं अन्न के लाने मारबे की गवाही नईं मिलत
फिरऊं रोटी के लाने अनादर अपमान सब सह रहे,
न चाहत भए आत्मा के हत्यारे बन रहे।

बड्डे महाराज –
बेटा! धन के देवता
आत्मा की बलि लयें बिना प्रसन्न नईं होत,
सो जो कछु बिधाता दिखाउत जात सो देखो,
और हिम्मत न हारो।
बहुत घाम है,
चल अभे तो चल इते सें उठ और जा घरे,
मोए पास ज्यादा तो नईयां
लै जे 20 रूपैया हैं
सो बच्चन खें नांज लेत जा घरे।'

बड्डे महाराज के इस प्रस्ताव ने जैसे गोकरन को ऊपर से नीचे तक झकझोर कर रख दिया हो। मन के एक कोने ने भूखे बच्चों के चेहरे सामने लाकर खड़े कर दिये और आदेश दिया पैसे ले ले, कम से कम एक दो सेर गेहूँ तो आ ही जाएगा लेकिन आत्मा मन को बार-बार डपट रही थी।

पेट की भूख भी अभी उसके भीतर के स्वाभिमानी ब्राह्मणत्व को पूरी तरह नहीं तोड़ पाई थी। जीवन में उसने जब भी कुछ माँगा, वो काम था.....

इस समय उसे ऐसा लगा जैसे दद्दा उसकी गरीबी के

स्वाभिमान पर दया का तमाचा मार रहे हों। अपने मनोभावों के अनुचित आवेश को मुस्कराहट में ढांक कर गोकरन बोला –

'दद्दा! अभईं तो तुमने कही,
रामायन कहत धीरज धरो।
सो बस आसीरबाद बनो रहे
इत्तई भौत है, चलत हों।'

उठकर दद्दा के पाँव छुए और पीपल को प्रणाम करके गोकरन आगे बढ़ गया।

अब तक सूर्य भगवान ने भी अपनी तीव्रता कुछ कम कर दी थी, या फिर गोकरन के भीतर के स्वाभिमान का तेज इतना हो गया था कि उस सूर्य की रोशनी मद्धम सी लगने लगी।

॥ 2 ॥

मुँह बनाते हुए मुनिया–

अम्मा! आज फिर जेई है,
ईसें कौन पेट भरत,
सात दिनां सें कभऊं कुदई ....
कभऊं पालक..खा रए,
रोटी कभै मिल है, बहुतई भूख लगी है?

सिन्धु ने मुनिया और श्रवन के सामने आँच से उतारकर उबली पालक और कुदई खाने को रख दी थी, जिसे देख दोनों बच्चे फिर मुरझाए से हो गए। सिन्धु की आँखें जैसे बस बरस ही पड़ेंगी लेकिन उसने खुद को समेटते हुए कहा–

'शाम खें पापा नांज ल्या हैं
सो बढ़िया रोटी बनाबी अपन अभे जो खा लो।'

सिन्धु ने अपने बच्चों की उम्मीद की रोशनी में फिर एक बूँद तेल डाल दिया था, हालांकि जानती थी कि ये छद्मी तेल ज्यादा देर तक नहीं चलेगा लेकिन शायद हृदय का कोई आशा भरा कोना उसकी इस उभरती आवाज पर भारी पड़ रहा था। आखिर मनुष्य का मन भी उसी को सत्य मानना चाहता है जो उसकी हृदय की आशा हो।

सूर्य देव पश्चिम की तरफ मुड़ चुके थे लेकिन अभी संध्या होने में समय था। सिन्धु अपनी कथरियों के खुलते पैबन्दों को कसने में लगी थी। तभी बगल के घर में आंच पर सिकती रोटियों की महक बार–बार आकर साँसों से टकराने लगी।

सिन्धु मन में बड़बड़ाती हुई खाट पर सोए मुनिया और श्रवन की ओर ताक रही थी,

'आज हवा लौ बैरन भई जात है
मुनिया की नाक बहुतई तेज है,

कहूँ जग गई तो का कै हों?'

सिन्धु तेजी से झोपड़ी के अधखुले दरवाजे की तरफ दौड़ी और भींच कर बन्द कर दिये लेकिन अब तो दरवाजे की दीवारें भी गरीबी की दरारों पर परदे ढांकने में नाकाम थीं। अपनी आखिरी साँसें गिनते किवाड़ों में लकड़ी के परदे बस दीखावटी ही रह गये थे, दरारों से छन-छन कर रोटी की सुगन्ध लिए हवा झोपड़ी में तैर रही थी मानो उनकी भूख पर अट्टाहस करने आई हो।

आखिर मुनिया की सांसों तक रोटी की महक ने दस्तक दे ही दी, दोनों की आँखें ऐसे चमक पड़ीं, जैसे कोई खजाना सामने आ गया हो! अभी सात साल की ही तो थी मुनिया गौरवर्णी बालिका ईश्वर की अनुपम कृति, पिता की प्रतिमूर्ति सी लेकिन इस कृति की काया हड्डियों पर किसी प्रेयसी की भांति प्रगाड़ आलिंङ्गनबद्ध थी, प्रायः भूखे पेटों में बीमारियाँ अपने गृह बना लिया करती हैं, एक तो अन्न पूरा नहीं मिलता उस पर बीमारी!

जीवन से उसे अब तक फांकों का ही उपहार मिला था और इस उपहार का फल था रोग, मुनिया का पेट भी अक्सर खराब रहने लगा था। सूखी लकड़ी सी हो चली थी, उसकी अस्थियों की गिनती सहजता से की जा सकती थी। भूख के दानव ने उस अबोध के शरीर की कान्ति को असमय ही लील लिया था।

खटिया पर पड़े-पड़े मुनिया ने आवाज लगाई -

अम्मा ओ अम्मा!
आज रोटी बनाई है का?

स्वाभाविक बालमन न जाने कितनी कल्पनायें कर चहक उठता है, कई बार उन कल्पनाओं से सत्यता तर्क वितर्क करती तो है किन्तु बालमन अन्ततः बालमन ही होता है वो उसी प्रतिबिम्ब को सत्य मानता है जो उसकी कल्पना ने बनाया होता है। सिन्धु का कोई उत्तर न पाकर अपने मन के प्रांगण में तर्क वितर्क के चित्र गढ़ती मुनिया खटिया से उठ के बार-बार सवाल को दोहरा रही थी।

चूल्हो तो बरो नईं दिखात.....
लगत बना कें धर लईं।

श्रवन और मुनिया ने आँखों ही आँखों में संवाद किया और दोनों खटिया से नीचे उतर अपनी अम्मा के पास पहुँच गए।

श्रवन तो अभी चार बरस का ही था, कहते हैं बेटों की सूरत यदि माँ पर जाए तो भाग्यशाली हुआ करते हैं, ऐसा ही कुछ तो कहा था दाई ने श्रवन के जन्म के समय लेकिन जबसे दुनिया में आया है तकलीफ के अलावा क्या देखा था मासूम ने, खिलौने तो दूर रोटी के टुकड़े के लिए भी तरस गया बच्चा, क्या ऐसा ही होता है भाग्यशाली होना?

श्रवन भी अपनी माता का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता था। वही सहृदयता, वही वर्ण, वही चाल-ढाल। लेकिन नौनिहाल किस्मत के धागों की बुनाई कहाँ समझ सकता है।

श्रवन और मुनिया अपने प्रश्न का प्रतिबिम्बन करते हुए सिन्धु के पास पहुँच गए।

सिन्धु भले बच्चों को अनसुना कर कथरी में पैबंद लगाने में जुटी थी लेकिन हर सवाल पर टांके तो उसकी छाती में लग रहे थे, गले में लाढ़ डालकर अबकि श्रवन ने अपनी अधतोतली जुबान से पूछा -

'काए अम्मा छही में रोती बनाई का?'

पेट की भूख वेदना श्रवन, मुनिया की आँखों में और माँ के कलेजे में उतर आई थी।

क्या था ये? छोटा सा वही प्रश्न तो है जो हर बच्चा अपनी माँ से पूछता है लेकिन इस सवाल से काँप उठी थी सिन्धु! क्या करे? कैसे क्या समझाए समझ नहीं आ रहा था, जब मनुष्य के बस में कुछ नहीं होता तो क्रोध उसके बचाव का सबसे बड़ा अस्त्र होता है, कई बार ये क्रोध आपके भीतर का दावानल होता है किन्तु बहुधा ये क्रोध हृदय की वेदना की तीव्रता भी हुआ करता है। सिन्धु का क्रोध दूसरे किस्म का

था उसकी वेदना भी उसे जलाए डाल रही थी, अतः ये क्रोधाग्नि उसे झुलसा न दे इसलिए झल्ला पड़ी।

कथरी पटकते हुए सिन्धु ने कहा–

'रोटी.....रोटी....रोटी! मैं बची हों सो मोखें खा लो,
चायें तो मोखें बजार में ठांड़ो कर दो
सो छक खें खा ल्यो रोटी'

सिन्धु ने अपनी बच्चे के गाढ़े आलिङ्गन को गले से उतारकर फेंक दिया। माँ की ममता का कलेजा चिर उठा था जब भूखे बेटे की लाड़ की गांठें झटके से तोड़ फेंकी। सबकी आँखों से बस आँसू झरे जा रहे थे और पेट तो पीठ से इस तरह चिपक चुके थे कि सिसकियों से भी भीतर न जाते थे। पेट में और कितनी गांठें लगाते पहले से लगी गांठें भी ढीली पड़ गई थीं लेकिन अभी भी उनके खुलने का समय कहाँ आया था, अभी तो रोटी की बात करना, किसी जघन्य पाप से अधिक कुछ न था।

उत्तरों के अभाव में अक्सर प्रश्नों से नजरें चुरा ली जाती हैं, ताकि बच्चों के और प्रश्नों की अवली न बनने पाए इसलिए सिन्धु तीर की तरह झोपड़ी से बाहर निकल गई।

सिसकती मुनिया समझ गई थी अभी पेट की गांठों को और कड़े से बांधना पड़ेगा। मुनिया ने श्रवन का माथा सहलाते हुए कहा–

भैया! रोटी कल बनेगी...
अभी पापा कहाँ आए हैं,
जब आएंगे तब अपन....
बहुत अच्छा-अच्छा खाएंगे।

आँखें बन्द कर होठों पर जीभ फेरते हुए मुनिया ने श्रवन के हाथ में पानी का लोटा थमा दिया, *ले अभी ये पानी पी ले।* दोनों नौनिहाल फिर से इंतजार के परदे आँखों पर टांगकर खटिया पर पड़ गए, सात दिनों से पेट में अन्न का दाना नहीं गया था तो खेलने की शक्ति भी न रह गई थी।

उधर घर की देहरी पर बैठी सिन्धु धरती को खुरचती हुई जैसे अपनी किस्मत को नोचने की कोशिश कर रही हो, पेट की भूख ने तन तो सुखा दिया था लेकिन कमबख्त ये आँसू सूखने का नाम ही न लेते थे। अपनी सूती पैबंदी धोती से आँखें पोंछते-पोंछते सिन्धु के चेहरे पर खून छलछला आया था।

'हे ईशुर आखिर करों तो का करों,
दस दिना सें मजूरी लौ नई मिली,
कहाँ से बारों जो चूल्हो,
कै तो सल्फास खबा दिऊं सबरन खां
और खुद खा लिऊँ सो सब कछु पटा जाए।'

कभी ऊंगलियाँ आपस भींचती, कभी सूखी धरती के साथ रगड़ती, आखिर पेट की सूखी आंतें दिमाग को भी कुन्द कर दिया करती हैं। जानती थी कि उसका पति खाली हाथ ही लौटेगा, अक्सर यही तो होता है, अबकि तो दस दिन से ये सिलसिला अनवरत चल रहा है लेकिन जब तक बाती में घी की थोड़ी सी भी चिकनाई होती है तब तक जलती रहती है, कुछ ऐसी ही अनकही सी आशा लगाए सिन्धु की बेचैनी भरी आँखें पति की राह पर इधर से उधर प्रतीक्षा में टहल रहीं थीं, जहाँ तक पहुँचती वहाँ तक दौड़कर गोकरन को ढूंढ आतीं।

जैसे ही सिन्धु को किसी के आने की आहट होती वो उठकर खड़ी हो जाती, कितनी बार ही वो उठ बैठ चुकी लेकिन गोकरन कहीं न दिखाई देता, जैसे-जैसे ढलती सांझ में दियों का प्रकाश बढ़ रहा था उसकी उम्मीद की रौशनी उतनी ही तेजी से मद्धम पड़ती जा रही थी।

सिन्धु (व्यग्रता से) -

'आखिर ऐसे कैसे ठेकेदार के पास बैठे कि
अभे लौ घर की सुध न आई,
भुनसारे के गये, अब सूरज लौटबे खें भओ
अभे लौ महाराज को अता पता नईयां।'

पेट भूखा हो तो क्रोध हावी होने लगता है, सिन्धु भी क्रोध को

नियंत्रित करने में स्वयं को असमर्थ सा पा रही थी। तभी दूर से आता हुआ गोकरन सिन्धु की गुस्से की लालिमा लिये आँखों से टकरा गया, उसके मायूस कदमों को सिन्धु ने दूर से ही भांप लिया था फिर गोकरन के चेहरे तक जाने की हिम्मत ही न हुई।

सिन्धु हारी हुई सिपाही सी लस्त शरीर का बोझ उठाकर खड़ी हो गई और बाहर ही रखे घड़े से पानी निकालने लगी तब तक गोकरन भी आ पहुँचा, गोकरन नीम तले बने चबूतरे पर ही मुँह नीचे करके बैठ गया। सिन्धु ने पानी लाकर दिया, स्थिति को कई बार व्याख्या की आवश्यकता नहीं होती, दोनों चुपचाप एक दूसरे को देखकर धरती की ओर मुँह करके बैठ गये।

कुछ कहने सुनने की किसी की हिम्मत न होती थी लेकिन फिर भी सिन्धु ने ही पहल की – *का भओ?*

सिन्धु के इस प्रश्न ने जैसे बंधे जल को किसी ने मार्ग दे दिया।

गोकरन (खिसियाते हुए) –

'काए का भओ?
कौन तें जानत नईयां?
ईशुर जाने कौन सी दुसमनी निकार रओ,
बाप की अवज्ञा करी मैंने और भोग रए तुम औरें।
चार गाँवन लौ फिर याऊत लेकिन काम कहूँ
कोऊ दयें खें तैयार नईयां,
अब की कौ हर मूस ल्याऊँ
कछु समझ नई आ रहो।'

सिन्धु उसके मायूस चेहरे को देखे जा रही थी, जी तो चाहता वो भी बोले लेकिन हिम्मत न होती। गोकरन बस बोले जा रहा था।

गोकरन –

बाम्हन बना दओ सो और मरे जात,
जो ऊँचे कुल को खंजर जीवन काटें डारत
लेकिन इखैं खुद सें बिलग नईं कर पाऊत,

अब येई स्वांग दुसमन भओ है हम औरन को,
काम दैबे बाले दूर सें देख कें मुँह बिचका लेत,
पीठ पाछें हँसत अलग हैं,
कहत लेओ आ गओ बम्हना बम्हनाई करन।
ऐसें लगत जैसे हमें मारें की गंगा उठा लई होबे।
तो भी बेशरमन की तरह हाथ जोरत फिरत रहत
लेकिन कोऊ के माथे पे सिकन तक नईं दिखात
और सरकारें तो हमाए लाने हैं कहाँ,
मान, मरजाद सब मार खें मजूरी कर लेत
सो ई सूखा ने ओऊ लील लई।
समझ नईं आऊत कहाँ जाओं का करों।
गंगा सौं! कभऊं-कभऊं लगत प्रान दै दें,
बेहयाई को अन्न खायें से बेहतर है भूखे मर जाएं।'

तभी सिन्धु बोल पड़ी-

'हओ दे देओ प्रान...
पै पहलऊं दोऊ बच्चन खें...
और मोखें सिल्फास खबा देओ.....

गोकरन सिन्धु को घूरते हुए -

हत्यारे तो हैं नईयां,
सो ई पे बस नईं चलत,
तुमाए मारें तो मैं जीअत नईं तो मर गओ हो तो।

गोकरन जैसे मोम की तरह जल-जल कर पिघल रहा था-,

'अम्मा कहत तीं,
ई धरती में तुम्हाए संगे-संगे
तुम्हाए पुरखन की जरें गड़ीं,
ई जरन खैं कभऊं न काटिये,
कछु न देहैं तो भूखन सोऊ न मरन दे हैं,
खाएं भरे को पैदा करई दे हैं।

मताई बाप की सुन लई होती तो
अपनी जरें न बैंचतो और न जो दिन देखने परतो।
तनक से पैसन के लालच में
अपनी जरें बेंच दई,
अब बैठे हाथ पे हाथ धरें,
और महली जैसन के आगे
काम की भीख सी मांगत फिरत।
अब न काम बचो, न जमीन, न पैसा।'

गोकरन की बातें सिन्धु धरती में आँखें गड़ाये सुन रही थी आखिर उस समय उसने भी तो गोकरन को कितना समझाया था लेकिन उसकी भी एक न सुनी थी। फिर भी पति की विवशता उसकी आँखों में सावन की तरह बरस रही थी। गोकरन का गला भी बोलते-बोलते रुन्ध आया था।

सूर्य भगवान भी अस्तांचल हो चले थे। पड़ोस में लालटेनें टिमटिमाने लगी थीं। सिन्धु ने सांझ के प्रकाश को हाथ जोड़े और भीतर लालटेन जलाई, तुलसी के सामने खूंटे पर टांग दी।

उधर मुनिया और श्रवन अब भी अपनी माँ और बाबू की राह देख रहे थे, दोनों दिखाई तो पड़े लेकिन उत्तर तो किसी ने दिया ही नहीं। झोपड़ी के भीतर आके दोनों बैठ रहे, अपने प्रश्न लिए श्रवन आके बाबू की गोद में चढ़ गया और मुँह ताकने लगा, मुनिया भी उसके बगल में आके बैठ गई कुछ पूछने की हिम्मत ही नहीं हो रही थी क्योंकि बाबू तो खाली हाथ घर में घुसे थे; चूल्हे में अम्मा फिर पालक उबालने लगी और कुदई बिनने बैठ गई थी, इस उबलती पालक ने उनके प्रश्नों के उत्तर आप ही दे दिये थे।

उस छोटी दस गज की कोठरी में एक गहरा निर्वात से पसर गया। न बर्तनों की खटपट, न तवे और चमीटे का संवाद यदि कुछ था तो सन्नाटे की ऐसी ध्वनि जो किसी तीव्र कोलाहल से अधिक कानफोड़ने वाली थी। सब एक दूसरे को देखने से भी कतरा रहे थे।

गोकरन पंखा झलता श्रवन के सिर पर हाथ फेरता बैठा रहा। थोड़ी ही देर में सिन्धु ने सबके सामने उबली पालक और कुदई की थाली परोस दी और स्वयं जाकर चूल्हे की धधकती लकड़ी पर पानी का छींटा मारने लगी।

चूल्हे की तरफ अपलक निहारता गोकरन उस ठंडे होते चूल्हे की आग अपने शरीर में महसूस कर रहा था। पालक के उड़ते धुंए और मुनिया की आवाज ने उसकी तन्द्रा भंग की, पिता ने दोनों बच्चों को अपने हाथ से पालक और कुदई खिलाए, शायद पिता का स्नेह अन्न की भूख को मिटा सके।।

सिन्धु ने उस रात कुछ नहीं खाया, गोकरन भी खाली पेट झोपड़ी के बाहर आंगन में दूसरी खटिया लगा के पड़ गया। आज रात कुछ अधिक उजली थी, आकाश चमकीले तारों से चमचमा रहा था। हाथों की उंगलियों में जनेऊ की गांठे बनाता सुलझाता गोकरन उस चमकीले उजाले की ओर ताकते हुए अपने गुजरे समय को जैसे आसमान के सितारों में खोज रहा हो, आज अम्मा बाबू बहुत याद आ रहे हैं, काश वे फिर वापस आ जाते!

अन्धेरा जैसे-जैसे गाढ़ा हो रहा था, सन्नाटे की आवाज उतनी ही तेज होती जा रही थी, इस बीच यदि कुछ अनवरत नाच रहा था वो था गोकरन का गुजरा वक्त, आज ये अनन्त जैसे उसके अभावों को उकेर रहा था। सब कुछ उस विस्तृत आकाश पर शब्दांकित होता हुआ सा प्रतीत हो रहा था। नीलगगन में उसके अशान्त हृदय की ध्वनियाँ गूँजायमान हो उठीं, मन समय के पंखों को पीछे उड़ाकर ले चला।

॥ 3 ॥

'हल्काई महाराज के इते जनेऊ को बुलऊवा है!'

पूरे गाँव में नाईन बुआ न्योता देते फिर रही थीं। गाँव के महिलाएं आपस में हंसी ठिठोली करती बातें कर रहीं थीं–

'काए जीजी गोकरन आठ बरस कौ हो गओ?'
'हओ काए इनईं दिनन तो भओ तो
हमाओ लखन और गोकरन एकई दिना के आएं।'
'ब्याओ के पूरे दस बरस बाद
बारा पथरा पूंजें भओ तो गोकरन,
बड़ी पुरोहिताइन कहाँ–कहाँ लएं नई फिरीं बहू खें,
पै नाती को मुंह न देख पाए डुकरा डुकरिया।'
'अई चलो जीजी काम निपटा लेओ जल्दीं,
बातन में तो दिन के दिन टरक जात,
चलने आ है महाराज के एते।'

आपस में गोकरन उम्र पर मोहर लगातीं महिलाएं अपने अपने काम समाप्त करने में जुट गईं।

हल्के महाराज के घर में बंधनवारे बंधे आम की बौरें बंधीं, चारों ओर उपवन सा सौन्दर्य बिखरा पड़ा था।

गोकरन तो फूला न समाता था आखिर ये सब उसी के लिए तो हो रहा था, दोस्तों के बीच आज तो वो राजा बना फिर रहा था।

लुट्टन – *आज का है गोकरन तुम्हाए घरे ?*

गोकरन (ऐंठकर) – *आज हमाओ जनेऊ है...जनेऊ......।*

छुट्टन – *जो का होत गोकरन?*

गोकरन – *हम न बाबू के जैसे गले में सफेद डोरा पहर हैं।*

बाल्यकाल इतना सहज होता है छोटी सी खुशी पर ही नाचने लगता है, झूमने लगता है। बचपन में तो कर्त्तव्य भी सुहावने लगते हैं।

गोकरन के इस उत्तर से बालक कुछ असहज से होने लगे।

लखन – काए अब तुम हमाए संगे न खेल हो का?
अपने बाबू के संगे मन्दिर और खेत पे
काम करन लग हो का?

गोकरन ने शेखी बघारते हुए –

और का.... अब हम बड़े हो गये हैं।

मनुज की यही विडम्बना है कि वह जिस काल में है उस काल में कभी जीना नहीं चाहता। ये क्रम सम्पूर्ण जीवन भर चलता है। इस समय गोकरन स्वयं को एक जिम्मेदार मनुष्य के समकक्ष समझने लगा था। बाल्यकाल की बखरी में दायित्व निर्वहन का बीजारोपण हो चुका था।

भीतर से अम्मा की आवाज आई– *गोकरन ओ गोकरन!*

गोकरन दौड़ता हुआ अपने आंगन में पहुँच गया और पीछे से उसके साथी भी दौड़े चले आये। इस समय बस सभी गोकरन को ही देखना चाहते थे, उनके अनुसार अब वो बड़ा हो रहा था।

गोकरन फिर अम्मा से पूछने लगा–

'काए अम्मा अब हम कित्ते बड़े हो जै हैं?

सुदामा हाथ ऊपर उठाकर बोली – *इत्ते बड़े।*

और बालक के नौनिहाल प्रश्नों पर मुस्कराकर कहने लगी –
पहले पण्डित जी के पास जा के बैठो,
जो कछु कहें बो करो,
और सब बातें ध्यान से सुनियो,
नई तो बहुत बड़ो पाप पर है।

ये पाप पुण्य का भय भी अजब होता है; बालक तो अज्ञानता में डर जाता है किन्तु बड़े तो जानकर भी डरते हैं और संभवत: यही भीरुता मनुष्य को मानवता एवं सत्कर्म के मार्ग पर जीवन भर चलने के लिए विवश करती रहती है।

अम्मा की सीख गोकरन ने बड़े गौर से सुनी और संन्यासी भेष धारणकर हाथ में गूलर की लकड़ी, कमण्डल कांधे पर चादर का पीताम्बरी झोला धरे गोकरन मण्डप में जाकर बैठ गया।

ये छोटा सा शिखाधारी संन्यासी ऐसा दिव्य प्रतीत होता था, जैसे धर्म स्वयं बालक बनकर बैठ गया हो। मुखमण्डल पर सूर्य सा तेज धारण किए शैशवकाल की किलकारी बाल्यकाल की अग्रिम यात्रा की ओर अग्रसर होने को थी।

संस्कार विधि आरम्भ हुई घर के आंगन में मन्त्रोच्चार के साथ मण्डप गाड़ा गया, मण्डप के चारों ओर बिछौने बिछा दिए गए महिलाओं का जमघट लगा; गाँव की अधिकतर महिलायें यहाँ एकत्रित हो गई थीं, हंसी चिरौरी करतीं; महिलाओं के ठहाकों से गूँजती पूरी बखरी भी ठिठोली सी कर रही थी।

गोकरन की अम्मा ने कहा –

'जीजी भीखीं गा लेओ ऐसें तो ठट्टा चलतई रै है।'

मतईयाँ की पत्नी ने ढोलक के पांव छुए और ढोलक की थापों पर जनेऊ के लोकगीत की स्वरलहरियां गूंजने लगीं।

'भीख दे माई, अशीष ले माई,
मै तो बरूआ बिरहामन रे ,
ऐ ही भीख के कारने
मैं तो जै हों बनारस रे।
काहे खां जै हो बनारस,
तुम्हरे बाबू हैं पण्डित रे,
घरई में वेद पढ़ा कें पण्डित बना हैं रे।।

एक तरफ जनेऊ के लोकगीत दूसरी ओर मण्डप पर स्वस्तिवाचन करते पुरोहित–

।। ॐ स्वस्ति न इन्द्रो बृधस्रवाः स्वस्ति न पूखा विश्व वेदाः।।
।। स्वस्तिनस्तो अरिष्टनेमि स्वस्तिनो बृहस्पर्तिदधातु ।।

।। ॐ मंङ्गलं भगवान् विष्णुर्मंङ्गलं गरुड़ध्वज।।
।। मंङ्गलं पुण्डरीकाक्षं मंङ्गलाय तनो हरिः।।

लोकगीत और वेदमन्त्रों का ऐसा सामंजस्य ग्रामीण परिवेश में ही देखने को मिल सकता है, अलौकिक मन मोहने वाला, हृदयबखरी को उपवन करने वाला।

विधानानुसार ब्राह्मणों के लिए सूत का जनेऊ, क्षत्रियों के लिए सन का और वैश्यों को ऊन का जनेऊ धारण करना चाहिए अतः सात द्विजों ने

।। ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।।
।। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तुतेजः ।।

मन्त्रोच्चार के साथ गोकरन के बायें कांधे पर मोटा त्रिसूत्री सप्तग्रन्थि सूत का जनेऊ रख दिया साथ ही जीवन के प्रति, स्वयं के प्रति और समाज के प्रति कर्त्तव्यों का पाठ आरम्भ हो गया।

पुरोहित ने गोकरन को जनेऊ के सभी नियम धर्म समझाये, गायत्री मन्त्र को विभिन्न अर्थों से सजाकर गोकरन को आत्मिक, वाचिक और शारीरिक रूप से सशक्तीकरण का ज्ञान दिया साथ ही बताया कि ये जनेऊ मात्र सूत का धागा नहीं, ये तुम्हारा धर्म है, दायित्व है, इसकी पवित्रता तुम्हारी शुचिता पर आश्रित है।

मनुष्य की शुचिता ही एक सुन्दर समाज का निर्माण करती है, अतः मानसिक, वाचिक एवं कायिक पवित्रता जीवन से भी सर्वोपरि रखना, आज से तुम्हारा ये दायित्व आरम्भ होता है।

बाल गोकरन कर्त्तव्यों एवं जीवन के क्लिष्टता भरे उपदेशों को सुनकर कभी विचलित होता, कभी सहम जाता, कुछ अधसमझा, कुछ सहमा सा गोकरन पुरोहितों और पिता की मुख की ओर बीच-बीच में देखता जाता किन्तु जैसे ही उसकी दृष्टि अपने मित्रों की ओर जाती गौरवानुभूति और विशिष्टानुभूति उसके भ्रान्तिमान् होते मुखमण्डल की कान्ति को प्रदीप्त कर देती।

गोकरन के पिता ने पुरोहितों के पीछे से बोलना आरम्भ कर दिया –

।। ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।।
।। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ।।

इस परिकल्पना को साकार करना..
अब तुम्हारा सर्वोपरि दायित्व है,
मानवता, करूणा एवं सहृदयता ही
तुम्हारे आभूषण होने चाहिए बेटा!

इस प्रकार के वचनों एवं आशीर्वाद के साथ उपनयन संस्कार पूर्ण हुआ, न्योछावरें हुईं, सभी महिलाओं ने बटुक बने गोकरन की झोली में भिक्षा के रूप में अन्न, धन आदि अपना-अपना आशीर्वाद डाला। आंगन में ढोलक की थापें कुछ मद्धम सी होने लगीं थी किन्तु नीम तले के चबूतरे से कहकहों पर ठहाकों की ध्वनि तेज हो रही थी। ग्रामीणों और हल्के महाराज के बीच धर्म, अधर्म और राजनीति की व्यंजना और समावेश की हवाएं हिलोरें लेती कहीं हल्के महाराज के पाले में चली जातीं, कहीं गाँव के अन्य लोगों की तरफ।

हल्के महाराज गोकरन के पिता एक सौम्य व्यक्तित्व के धनी, विद्यालय तो नहीं गये थे किन्तु संस्कृत के पुराणों वेदाङ्गों की गुरुमुख से विधिवत् शिक्षा अवश्य ली थी। उनके मुख के आभामण्डल पर ज्ञान का प्रकाश उनके गाढ़े रंग पर स्वर्ण सा रेखांकित होता था। समाज, मनुष्य और प्रकृति के विषय में सदैव चिन्तनरत रहते। गाँव वाले अक्सर उनके साथ बैठकर धर्म और नियमों का पाठ तो लिया ही करते अपनी समस्याओं का निवारण पूछने भी उन्ही के पास आया करते थे, समस्याओं का निराकरण भले न कर पाएं किन्तु हौसले की फसल पर अपने ज्ञान सिंचन से हरियाली अवश्य ला देते।

गोकरन अपने जनेऊ को लहराते हुए अन्दर से बाहर दौड़ा-दौड़ा फिर रहा था और बार बार अपने मित्रों को जनेऊ दिखा अपने बड़े होने का रौब चिढ़ाता घूम रहा था।

मतईयाँ ने गोकरन की ओर गौर से देखा और हल्केराम से कहा –

‘काए खैं महाराज तनक से लरका खें
ई सब बंधन में बांध दओ
और आजकल के जमाने में
कोऊ जनेऊ सनेऊ कहाँ पहरत।’

हल्के महाराज के चेहरे पर हल्की सी मुस्कान तैर गई, उन्होंने गोकरन को आवाज लगाई और गोद में बैठा लिया, माथे पर स्नेहवृष्टि करते हुए बोले –

ये जनेऊ नहीं धर्म है, कर्त्तव्य है, नियम है!
अगर सीधे सीधे कहूँ तो नियम ही कर्त्तव्य है
और कर्त्तव्य ही धर्म और ये धर्म के प्रतीक
हमें हमारे सामाजिक दायित्वों के प्रति
जागरूक रखने का कार्य करते हैं,
हमारी जीवन शैली को
उत्कृष्ट नियंत्रण प्रदान करते हैं
जिससे शरीर ही नहीं आत्मा भी शुद्ध होती है।

मतईयाँ – *तो का महाराज बिना इके पहरें*
आत्मा और सरीर सुद्ध नई होत का?

हल्केराम – *होता है बिल्कुल होता है*
किन्तु बंधनों और अनुशासन से हीन मनुष्य
पशुवत् होता है,
उसकी अभिव्यक्ति में स्वयं के लाभ के अतिरिक्त
कुछ नहीं रह जाता
किन्तु ये नियम एक धागे के प्रति भी अपने
दायित्व निर्वहन के लिए *प्रतिबद्ध करते हैं*
फिर जरा सोचो कि
मनुष्यों के प्रति, समाज के प्रति
दायित्वों के डोरे कैसे टूट सकेंगे।

लेखनीराम – *तो महाराज!!*
जो काम तो आप जब बच्चा बड़ो हो जाए
तब कर लो जरूरी है
तनक सी उमर में करो,
बे का जाने का नियम? का धरम?

हल्केराम – *अच्छा ये बताओ ??*
क्या तुम किसी भी पेड़ से
सीधे फल प्राप्त कर सकते हो
अथवा कोई फलदार पेड़ सीधे फल देने लगता है?

लेखनीराम – *नहीं....नहीं...*
ऐसें कैसें दैहे पहले सहेजने परत।

हल्केराम – *हाँ....*
उसी प्रकार ये प्रथायें, ये नियम,
बाल्यकाल से ही सहेजने पड़ते हैं,
तभी ये बड़े होकर दायित्वों में परिवर्तित होते हैं,
धर्म का अर्थ कोई पूजा, भजन,
भगवान को भोग लगाना मात्र नहीं होता,
धर्म तो मनुष्यता है, ज्ञान है,
परोपकार है, दया है, करुणा है, नियम है।

मतईयाँ – *मतलब महाराज!*
जौन धर्म नईं मानत सो उमे दया,
परोपकार नईं होत का?

हल्केराम– *नहीं भैया! बिल्कुल नहीं,*
धर्म का अर्थ मैंने कहा न
पूजन भजन मात्र नहीं,
जिस प्रकार नेत्र का धर्म होता है देखना,
कान का सुनना और मस्तिष्क का समझना
उसी प्रकार हमारा कर्म होना चाहिए,

लाभ हानि से परे दायित्वों का
सामूहिक रूप से निष्पक्षता से वहन करना,
यही धर्म कहा जा सकता है।

बड्डे महाराज – *अपन लोग गाऊत हैं न,*
'वृक्ष कभऊं न फल भखे, नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारणैं साधुन धरा शरीर ।।'

हल्केराम – *हाँ!*
बिल्कुल प्रकृति के लिए
कोई पूजा करने का या भजन करने का
धर्म नहीं होता लेकिन फिर भी
प्रकृति धर्म से हीन नहीं कही जा सकती
क्योंकि उसके अपने दायित्व हैं;
जिनका वह निर्वहन करती है,
बस यही प्रकृति का धर्म एवं नियम है।
इसी प्रकार संस्कार, हमारे धर्म के प्रणेता हैं
जिनसे जुड़कर कभी मनुष्य अपने
धर्म से विरक्त नहीं होता।

गोकरन गोद में बैठा पिता के मुखमण्डल पर बिखरती ज्ञान आभा और मनुजता के तेज का विश्लेषण कर रहा था, ये धर्म और नियमों की बातें उसे समझ न आ रहीं थीं, उसे तो अपने जनेऊ के नियम याद रखने थे बस, इससे अधिक कुछ नहीं।

कदाचित् बाल्यावस्था में सीखा हर पाठ पूरे जीवन का प्रेरणास्रोत बन जाता है। आज जो बातें समझ से परे होती हैं वही शिक्षायें भविष्य का मार्ग तय करती हैं। पिता की बातों से गोकरन के मन में प्रश्नों की जिज्ञासा का बालक आकार लेने लगा था, ये आरम्भ था.... उसकी जीवन छतरी पर धरी जा रही नियमों और दायित्वों की पहली ईंट का।

॥4॥

बारह बरस का हो गया था गोकरन, पढ़ाई के साथ-साथ अब अपने पिता के साथ बैलों के ऊपर सवारी करता, खेत भी जाया करता, गाय की सेवा किया करता, अम्मा के गले से लिपट दुलारता, कई बार तो चूल्हे में अम्मा के साथ बैठ जाता और कहता –

'ल्याओ अम्मा हम रोटी बना दें।'

अम्मा खिलखिला पड़ती अपने चून सने हाथों से दुलारती और कहती –

'लल्ला तुमाई दुलईया सें रोटी बनवा हैं,
अपने पांव दबवा है,
बखरी गुबरवा हैं।'

गोकरन शरमाकर भाग जाता। सुदामा आँचल मुँह पे धरे हंसती और दूर तक भागते अपने नंदलाल को निहारती रहती। सन्तान के सुख की परिकल्पना को मूर्त रूप देने के लिए माता-पिता अपने सुखों को कहीं दूर पीछे छोड़ आया करते हैं।

बच्चे के मुख की हंसी उनके हृदय की ठंडक एवं अधरों की हंसी बन जाती है और सन्तान का दुख उनकी असीम वेदना।

आंगन में गाय रम्भाने की आवाज जोर-जोर से गूँज रही थी, सुदामा ने चिन्तित स्वर में कहा–

'आज जानें काए जा इत्ती रम्हा रही,
आजई ब्यां जै है का, गोकरन भगत जा,
लिखनी कक्की खैं दौर खें लिवा तो ल्या।'

गोकरन लिखनी के घर की ओर दौड़ गया, न इधर देखता न उधर, रास्ते में लोग टोकते –

'रे लरका कहाँ इत्ती जोर से
गदबद दयें है, का हो गओ?'

वैद्य के यहाँ से लौटती लिखनी कक्की रास्ते में ही मिल गई। गाढ़े श्यामवर्णी लम्बी कद काठी से सजी लिखनी उम्र से अभी पैंतीस बरस की ही थी लेकिन बालपन में विवाह फिर बीमारियों और सन्तानों की व्याधियों ने लिखनी की देह को कमजोर कर डाला था। शरीर में हड्डियों का समूह साफ झलकने लगा था।

गोकरन (लिखनी का हाथ घसीटते हुए)-

'कक्की जल्दी चलो
हमाई गईया रम्हा रई बहुत,
अम्मा ने बुलाओ।'

लिखनी को गाय के गर्भवती होने की सूचना पूर्व से ही थी प्राय: गाय की पड़ताल के लिए जाया करती थी। गाँव में जानवरों की प्रसूती के लिए लिखनी को ही बुलाया जाता था। लिखनी हाल समझ गई - *चल चल! झट्टई चल*, कहते हुए गोकरन के साथ तेजी से उसके घर की ओर निकल पड़ी।

सुदामा ने लिखनी के थरथराते शरीर को देख प्रश्न किया-

राम.. राम... भिन्ने की अम्मा!
का हो गओ? बड़ी कमजोर दिखात,
हाथ पाँव कपत हैं?

लिखनी - *राम.. राम..... गोकरन की अम्मा! बुखार आऊत पंद्रा दिना हो गये... जाने कितनी दवाई खा लईं.. पै आराम नईं लगत।*

इतने में गाय के रम्हाने की आवाज और तेज हो चली।

लिखनी - *चलो तो बिन्ना*
पहले गइया खें दिख लें, तलफत हो है।

कुछ ही देर में हल्के महाराज के आंगन में गाय ने एक सुन्दर बछिया को जन्म दिया। लिखनी ने अधिकारपूर्वक कहा -

गोकरन की अम्मा!
तेली बिना खाएं न मान हों।

सुदामा ने लिखनी का आंचल गेहूं से भर दिया ग्यारह रूपए और गुड़ की ढेली देकर कहा –

हओ जो कछु कहें की बात है,
गोकरन सें भिजवा दै हों।

घर में बछिया के जन्म पर प्रसन्नता बरस रही थी। बछिया को देखकर गोकरन तो फूला नही समा रहा था, जैसे आज उसे नया साथी मिला हो, पूरे गाँव में दौड़ा-दौड़ा फिरता –

कक्की हमाई गैया ने बछिया दई है,
मतईयाँ कक्का... ओ कक्का!
हमाई गैया ने छोटी सी बछिया दई है।'

पूरा गाँव गोकरन की प्रसन्नता को देखकर आल्हादित हो रहा था, कुछ महिलायें तो यहां तक कह जातीं –

'रे गोकरन तैं तो ऐसो फूलो फिरत
जैसें गैया ने बछिया न दई होबे
तोरें एक भैया भओ होबे'

और ठहाके मारकर हंसने लगती लेकिन आज गोकरन की प्रसन्नता के सम्मुख कोई हंसी ठिठोली असरदार न थी।

अल्हड़ बचपन ऐसा ही होता है, प्रेम का अथाह सागर जो सभी को समकक्ष मानकर प्रेम करता है और फिर बच्चे तो मनुष्य के हों या फिर जानवर के, सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति होते हैं। दिन रात गोकरन बछिया की देखभाल में रहने लगा, गोकरन के वात्सल्य से पोषित गाय की बछिया भी जल्दी ही बड़ी हो रही थी।

गोकरन के साथ अठखेलियाँ करती बछिया, सुदामा और हल्केराम के लिए दूसरी सन्तान सी प्रिय थी।

किन्तु कहते हैं, समय बड़ा बलवान हुआ करता है और सम्भवतः क्रूर भी, उसके गर्भ से किस घड़ी का जन्म होगा, कोई सुध नहीं पा सकता। इस बरस भी खेती में कुछ लाभ न हुआ लेकिन गैया

के बियां जाने से कम से कम अन्न के साथ घी-दूध मिल जाया करता है, हल्केराम इतने से ही संतुष्ट रहते थे, दोनों माता पिता अपने बेटे के पोषण में कोई कमी न चाहते थे लेकिन

'होइहै वही जो राम रचि राखा' ।

लिखनी कक्की जाति से चमार थी, घर में एक बेटा ही था, भिन्ने, लेकिन माँ से अलग रहने लगा था, माँ क्या खाती क्या पीती उससे उसे कोई मतलब नहीं होता था, फिर भी लिखनी पुरखों की बची दो बीघा खेती भिन्ने के साथ ही करती थी और दूसरी सन्तानों को तो गरीबी लील गई थी।

पति को गुजरे चार साल हो गये थे, इन चार सालों में भिन्ने पूरी तरह से लिखनी के काबू से बाहर हो गया था। उसकी बैठक या तो ठेके पे होती या फिर फड़ पे। कोई उसे कुछ कहने समझाने का प्रयास करता तो भिन्ने, गाली-गलौच में उतारू हो जाता उस पर उसकी पत्नी सौधी ढाल बनकर सामने खड़ी होती, इस शह ने उसे और बिगाड़ दिया था।

हल्केराम ने कई बार भिन्ने समझाने का प्रयास भी किया कि माता से तुम्हारा अस्तित्व है, जरा सोचो जो तुम उसके साथ कर रहे हो वो भी तुम्हारे साथ करती तो क्या होता। तभी भिन्ने की पत्नी की कनकनाती आवाज भीतर से गूंज पड़ी -

'ओ महाराज!
दुनिया भरे के धरम करम की पोथी इते न बांचो,
हमाए चूल्हे में झांकबे की जरूरत नईयां
बड़े जुधिसठर भए हो तो
तुम काए नई उठा लै जात डुकरिया खें अपने घरै।'

महिलाओं से मुँहजोरी करना हल्केराम कभी अच्छा न समझते सो चुप होकर लौट गये।

इस बार लिखनी काकी की तबियत बिगड़े पूरे तीस दिन हो गए थे, मृत्यु बस जैसे समय की प्रतीक्षा करती देहरी पर बैठी-बैठी त्रास दिये जा रही थी।

हल्केराम खेत की ओर चले जा रहे थे तभी बड्डे महाराज रास्ते मे मिल गये हल्केराम ने पांव छुए -

राम... राम... दादा!

बड्डे महाराज - *राम राम.. हल्के!*
तैनें सुनो लिखनी की तबियत के बारे में?'

हल्केराम - *हओ सुनो तो है, हमनें*
भिन्ने खें समझाएं की कोशिश करी
सो उकी घरवाली चढ़नदार हो गई
सो फिर हमऊं चुप हो गये।'

बड्डे महाराज -
'लिखनी की हालत ई बार बहुतई खराब है,
ऊ भिन्ने जुआ के फड़ पै दिन भर डटो रहत,
दारू की बोतल हाथ से छूटत नईंया
और जमीन जौन हती सो सब पी खा गओ,
दो बीघा जैसें तैसें बची
सो ओऊ खें बेंचे पे उतारूं है,
बा तो लिखनी नाव नईं करत,
नईं तो वोऊ पी गओ होतो,
अब मताई मर रही सो झकन तक नईं जात।'

हल्केराम - *'का करिये दादा! घर-घर के येई हाल हो रहे अब तो, गाँव में जो सब देख खें गोकरन की बड़ी चिन्ता भए करत, जो कछु देख है, ओई तो सीख है।'*

बड्डे महाराज - *बात तो सही है हमाये सपूत खें देख लो, पूरे बिगरें की राह पे हैं, न पढ़त है, न कछु, बो तो कहो पुरोहिताई है, जब तक हमाई सो चलो जात, आगे इसुर भरतार। अभे तो हम, लिखनी के इते तक जा रहे, चल है का?'*

हल्केराम - *हओ दादा चल हैं।*

दोनों लिखनी के घर की तरफ मुड़ गये। घर के नाम पर चार माटी की दीवारें और लगभग सौ खपरैल की छत जिसकी कनखियों से सूरज भगवान, इन्द्र देव और सभी पशु पक्षियों का आवागमन सहज था।

हल्केराम और बड्डे महाराज लिखनी की झोपड़ी तक पहुँच गये जैसे ही दरवाजा खोला तो सड़ान्ध भभकारे से बाहर निकली, दोनों ने मुँह पर गमछा लपेटा और आवाज लगाई –

लिखनी.... ओ लिखनी.....

अन्दर से कंपकपाती आवाज ने रामनामी से स्वागत किया–

राम... राम... पुरोहित!

का रे लिखनी का हाल बना लओ? बड्डे महाराज बोले, हल्केराम ने कहा – *'भौजी बड़े डाक्टर खें काए नई दिखाओ ?*

कराहती निरीह आवाज, आँखों में तैरती वेदना लिए लिखनी बोली –

'गाँव के वैद्य से पुड़िया लै आई ती,
पै कछु असर नई होत, सरीर भटा सो भुंजो जात,
बुखार उतरें को नाम नई लेत,
डाक्टर के पास कहाँ से जाओं,
जित्ते पैसा हते सो करा लओ इलाज,
अब फूटी कौंड़ी नई बची,
सब तो ऊ कपूत ने छुड़ा लओ,
ऐसे सें तो न होतो तो साजो हतो,
येई दिना के लानें देविन खैं मूड़ पटके करत ती,
भगवान अब जीबो नई चाहत मैं।'

गहरी सिसकी ने सांसों को और तेज कर दिया लेकिन लिखनी जैसे अपने दर्द का सारा गुबार आज ही निकाल देना चाहती थी, न जाने कल किसने देखा, सिसकियों को सहलाते हुए बोली–

'पुरोहित! इत्तो कर दइयो कि मरें के बाद कहूं
मैं इतईं सड़ न जाओं, अन्तिम किरिया करा दइयो।'

अपनी मृत्यु को आवाज देते देते, शारीरिक पीड़ा से अधिक हृदय की वेदना ने लिखनी की वाणी को दबा दिया।

लिखनी के तिरते आंसू और वेदना से आप्त शरीर ने हल्केराम को झंझोड़ कर रख दिया था, समझ नहीं पा रहे थे कि आखिर क्या कहे।

बड्डे महाराज और हल्केराम, लिखनी को सान्त्वना देकर निकल तो आए लेकिन भीतर बैठी मानवता उन्हें बार-बार विचलित किये जाती थी।

बड्डे महाराज बोल पड़े -

मोरे पास तो खुद कछु नईयां
करों तो का करों मैं।
पै इकी दशा नई देखी जात
और भिन्ने तो सुनतई नईयां कोऊ की।

हल्केराम चुप थे, जैसे कोई गूढ़ रास्ता तलाश रहे हों -

देखत हैं दादा का कर सकत?
अभे चलत हैं, पालागें...

और अपने खेत की तरफ मुड़ गये। रास्ते भर लिखनी का दर्द उनकी आँखों के सामने झूलता जा रहा था, विचारों और समाधानों का मन्थन करते करते हल्केराम खेत पर पहुँच गये। जब भी हल्केराम का मन विचलित हुआ करता अपने खेत के देवी मन्दिर में आँखें मूँद बैठ जाया करते। आज हल्केराम फिर एक अरज लेके आये थे।

देवी की आँखों में आँखें डाल समाधान की खोज कर ही रहे थे कि रम्भाती गइया बछिया लिये गोकरन खेतों पर दौड़ा चला आ रहा था। ये देवी का संकेत था या उसके आत्मा की आवाज पता नहीं किन्तु समाधान सामने था लेकिन वो समाधान कैसे स्वीकार करें मन गवाही न देता। कभी बछिया के साथ खेलते अपने बेटे को देखते कभी माँ के विग्रह की ओर। अन्तर्द्वन्द्व में अक्सर विजय आत्मा की हुआ करती है।

मंगलवार पशुओं का मेला लगा करता था गाँव में, हल्केराम सुबह जल्दी ही गाय और बछिया खोल के जा ही रहे थे कि सुदामा ने टोका –

'कहाँ सबेरे से दोनऊं खें लै के चले?'

हल्केराम ने याचना भरी दृष्टि से सुदामा की ओर देखा और अपनी सारी व्यथा उसके समक्ष रख दी।

हल्केराम – *सार खाली तो नईयां बैला हैं,*
इतनो धीरज धर लैं हैं तो
कोऊ को जीवन बच जै है।

सुदामा किंकर्त्तव्यविमूढ़ सी खड़ी समझ न पा रही थी कि अपने बेटे का मुँह देखे या मृत्यु की राह पर जाती लिखनी का जीवन। मातृत्व और मानवता की कसौटी थी, कभी मातृत्व भारी पड़ता, कभी मानवता, अन्ततः मनुजता ने मातृत्व को अपने पाले में डाल ही लिया, पति को गाय और बछिया ले जाने की सहमति दे दी। सुदामा गाय और बछिया से लिपटकर ऐसे बिलख पड़ी जैसे माँ अपनी पुत्री की विदाई करती है।

गोकरन स्कूल से दौड़ता भागता सीधे गईया बछिया के पास पहुँचा करता था लेकिन आज वहाँ दोनों न थे। गोकरन घबराया चिल्लाता दौड़ा आया,

अम्मा ओ अम्मा! सार में बैला अकेले बंधे,
गइया बछिया कहाँ गईं,
बाबू खेत पे लै गये का?

अम्मा चुप थी, बार-बार गोकरन प्रश्न दोहरा रहा था, कांपती आवाज में अम्मा ने बच्चे को झिड़क दिया –

'मोखें नई पता भग इते सें।'

गोकरन ने अनहोनी की परछाई अम्मा की आँखों में पढ़ ली थी। कभी खेत पे कभी तालाब पे यहाँ से वहाँ भागता गोकरन पूरे गाँव

में अपनी गईया बछिया को ढूँढ आया लेकिन उसकी गईया बछिया बिछड़े समय की तरह अब उसके सामने कभी नहीं आ सकते थे।

उधर चार हजार में गाय और बछिया बिक गईं, हल्केराम ने प्रेम का आवरण गईया बछिया की पीठ पर डाल उसे विदा कर दिया, रम्भाती गाय हल्केराम के पास से जाने को तैयार न होती थी, आखिर पशुओं में भी प्रेम वेदना का ज्वार भाटा हुआ करता है, जबरन उसे खींच के मालिक ले जा रहा था, दूर तक हल्केराम अपनी गाय को जाते हुए देखते रहे, समझ नहीं पा रहे थे, किसी के जीवन को बचाने के लिए बेजुबान जीव की कीमत लगाकर क्या उसने सही निर्णय लिया है, पता नहीं पाप का भागी बन रहा है या पुण्य का, प्रश्नों का मंच उनके अन्तर्मन को बारम्बार उद्वेलित कर रहा था।

हाथ में रुपये दबाए हल्केराम अपने को पाप पुण्य के तराजू में तौलते हुए सीधे लिखनी के पास पहुँचे उसको बड़े अस्पताल ले गये, बुखार मस्तिष्क में पहुँच चुका था, डॉक्टर ने पाँच दिन अस्पताल में रखा, लिखनी अब जी उठी थी। उसके मुख पर जीवन दीप्ति देखकर अपने पाप का बोझ कुछ कम लग रहा था। *'भौजी अब ठीक हो?* हल्केराम ने लिखनी से पूछा।

लिखनी – *हओ लाला!*
तुम तो देबदूत बनकें आए
नई तो मैं तो जमराज के दोरें बैठी ती।'

हँसती खिलखिलाती लिखनी को देखकर अपनी गाय के अन्तिम करुण क्रन्दन की पीड़ा हल्केराम के मस्तिष्क से कुछ कम अवश्य हुई, साथ ही मन ने तर्क किया दुःख किस बात का तेरी गाय जहाँ होगी जीवित होगी, अपनी सन्तान के साथ प्रसन्न होगी किन्तु हृदय का एक कोना कहता गोकरन का क्या?

इधर अनमना गोकरन चार दिन से रोज अपने बाबू की राह पर आँखें बिछाए बैठा रहता, स्कूल जाता भी तो भाग आता। पाँचवे दिन बाद हल्केराम अपने घर पहुँचे ही थे कि गोकरन की प्रश्नवाचक निगाहों ने

उन्हें कठघरे में लाकर खड़ा कर दिया, हल्केराम समझ न पा रहे थे कि उसके बालप्रश्नों का क्या उत्तर देंगे?

गोकरन चुपचाप पिता की ओर देख रहा था, हल्केराम ने धीरे से बेटे को अपने पास खींचा और पूछा –

बेटा! ये बताओ यदि तुम्हें भूख लगी हो
और तुम्हारे समक्ष कोई इतना भूखा आ जाए
जो भूख के कारण मृत्यु को प्राप्त होने वाला
हो तब क्या करोगे?

गोकरन ने झट से उत्तर दिया – उसे *अपना भोजन दे दूँगा।*

हल्केराम मुस्कराए अपने बेटे को अपनी छाती में भींच लिया, आँखों में संतोष तैर गया, कल तक गाँव के बिगड़ते वातावरण को देखकर जिस बेटे के लिए चिन्ता होती थी, आज अपने संस्कारों पर गर्व हो रहा था।

हल्केराम ने कहा *बस बेटा!* मैंने भी यही किया
किसी के जीवन से अधिक मूल्यवान् कुछ नहीं,
लिखनी कक्की बहुत बीमार थीं।

ठीक है बाबू कोई बात नहीं, गोकरन ने बाबू की बात समझ ली थी। फिर भी एक प्रश्न अवश्य किया *बाबू हमारे पास पैसे होते तो गईया को नहीं बेचना पड़ता न?* हल्केराम ने मुस्कराकर उसके बालों में हाथ फिराया और मूक स्वीकृति दी।

बालपन तकलीफों पर आवरण तो शीघ्र
डाल लिया करता है, किन्तु विचार की
एक गहन दीवार अवश्य बनने लगती है।

गोकरन के मस्तिष्क में धर्म के साथ-साथ धन की महत्ता भी स्थापित होने लगी।

॥5॥

गोकरन....ओ गोकरन......

भीतर से अम्मा की आवाज लगाई, लेकिन गोकरन तो खेलने में मस्त, उसे किसी की आवाज नहीं सुनाई दे रही थी। गोकरन उम्र के पंद्रहवें साल में था, लम्बाई खूब निकल आई थी, मां बाप का इकलौता बेटा था तो कुछ अधिक ही प्रेमसिञ्चन हुआ करता था इसीलिए सेहत भी अच्छी ही थी। सुदामा ने लगभग दस आवाजें लगा दीं लेकिन गोकरन मोहल्ले के लड़कों के साथ खेलने में मस्त, बार-बार अम्मा की आवाज को अनसुना कर देता, आखिर सुदामा बाहर ही आ गई।

सुदामा कड़कती हुई बोली –

काए रे तोखें सुनात नईया का इत्ती देर सें बुला रही!

का है अम्मा ? गोकरन हांफता सा दूर से ही चिल्लाया।

सुदामा – *जाओ जो डब्बा बाबू खें खेत पे दै आओ, लौट खें खेलिओ।*

गोकरन कितना ही मसखरा था लेकिन अम्मा बाबू की बात न टाला करता था।

उसने अम्मा के हाथ से रोटी का डिब्बा लिया और साइकिल का टायर दौड़ाता हुआ खेत की तरफ गुनगुनाता चल पड़ा,

'सुहाना सफर और ये मौसम हसीं'

चैत का महीना था। खेतों में फसलों की कटाई के लिए मजदूर हाथ में हंसिया लिये कटाई में मशगूल थे चूंकि इस बरस खेतों में फसल अच्छी हुई थी इसीलिए किसानों के मजदूरों के सबके चेहरे पर चैत के सूर्य का प्रकोप भी मलिनता या थकान की चादर न डालने पाता था।

चैत काटती महिलायें ईश्वर को धन्यवाद देती और कलरव करती गा उठतीं –

गिरधारी मोरो बारो गिर न परे,
गिरधारी मोरे बारो गिर न परे,
एक हाथ प्रभु मुकुट सम्हारें,
दूजे हाथ सखी दइयो री सहारो
सखी दइयो री सहारो गिर न परे,
गिरधारी मोरो बारो गिर न परे ।।

इस तरह आसपास का पूरा क्षेत्र लोकगीतों और हंसी ठहाकों के कलरव से गूंजायमान हो रहा था। चैत की बरसती आग में भी उत्सव का सा माहौल था।

हल्के महाराज से आसपास के मजदूर कहते –

अरे हलकाई महाराज!
तना कछु रामनामी सुना देओ।

हलकाई महाराज बालराम चरित गाते हुए चुटकियों को थिरकाने लगते हैं –

कबहूँ ससि मागत आरि करैं
कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं ।
कबहूँ करताल बजाइके नाचत
मातु सबैं मन मोद भरैं ।।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै
पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा
तुलसी-मन-मन्दिर में बिहरैं ।।

लोकगीतों की सुरीली तानें आकाश मण्डल के जलते सूर्य पर नृत्य करती यों मालूम होती थीं जैसे रश्मियाँ जल के हृदयस्थल पर नृत्य करती हैं। गर्म होती हवायें सुख की शीतलता को तपाने में असफल होती जाती थीं इसीलिए चिढ़-चिढ़कर और आग बरसाने का यत्न कर रही थी।

दूर से चक्का दौड़ाता गोकरन दिखाई पड़ता है, मतइयाँ ने आवाज लगाई –

अरे ओ हलकाई महाराज!
गोकरन आ गओ है डब्बा लै कें,
आज भौजी ने कछु सपेसल बना खैं
भेजो है जाने का?

चारों तरफ ठहाके के साथ लोकगीत गूंज उठता है,

आसों बाई ब्याओ मोए करावने दद्दा सें कह दे।
आसों बाई ब्याओ मोए करावनें।।

जोरदार हंसी के साथ हल्केराम गोकरन के पास चल दिये, मन्दिर पर पहुँचे, खेत पे बना ये देवी का मन्दिर हल्केराम के पुरखों ने बनवाया था, पीढ़ियों से हल्केराम का परिवार ही इस मन्दिर की सेवा किया करता था। चारों ओर हरे-हरे पेड़, बगल में कुआँ रंग बिरंगे फूलों से घिरा ये देवस्थान किसी रमणीय स्वर्ग के उपवन से कम नहीं था।

हल्केराम प्रतिदिन स्नान करके प्रथमतः इस मन्दिर की सेवा करने आया करते थे। जब तक गोकरन छोटा था तब तक अपने पिता के साथ प्रतिदिन यहाँ आता था लेकिन अब दो वर्षो से गोकरन उनके साथ नहीं आता, हल्केराम भी उस पर किसी प्रकार की जबरदस्ती न किया करते थे। उनका मानना था बालक पर अनुशासन उतना रखना चाहिए जितने में उसके भीतर के अवगुण मरते हों, उन्मुक्त वातावरण में ही विकास अपने उत्कर्ष की सीमाओं को छूता है।

हल्केराम ने गोकरन के हाथ से डिब्बा हाथ से लिया और वहीं से आवाज लगाई -

आ रे मतईयाँ ! तैऊं खा जा रोटी,
और तनक पानी भरें लएं आइये।

मन्दिर के प्रांगण में लगे आम के पेड़ के चबूतरे पर हल्केराम डिब्बा खोल के बैठ गये, डिब्बा खुलते ही भरवां भटा, हरी चटनी की सुगन्ध दूर-दूर तक फैल गई, इसे ग्रामीण परिवेश का जादू ही कहिये कि यहाँ की हवा में किसी कालेपन की मिलावट नहीं होती, कोई भी महक हो बड़ी सहजता से दूर तक पसर जाया करती है। उसी प्रेम की

महक और ध्वनि को सुनकर आसपास के कृषक भी हल्केराम के पास अपनी-अपनी रोटी की टोकरियाँ खोलकर बैठ गये, गोकरन खेत के ट्यूबवैल की ओर दौड़ गया, बाल्यकाल को जलकिलकारियां करने में अधिक आनन्द आया करता है। गोकरन भी ट्यूबवेल की तेज धारा में जलकिलोरें करने लगा।

मतईयाँ – *आसौं इसुर ने दया कर दई*
फसल तो साजी हो गई
बस अब जौ लो खरयान सें उठ न जाए तौ लौ
और धीरज धरें रहे भगवान बस फिर बन गओ समझो।

हल्केराम – *सही बात है भइया,*
आजकल तो ऊपर वालो तक
हम किसानन पै रूठो रहत!

सभी ने एक सहज सी स्वीकारोक्ति दी।

हल्केराम – *मतईयाँ तैंने लरका खें, स्कूल भेजो की नईं?*

मतईयाँ – *का कर है महाराज पढ़ कें,*
येई कर है, सो घर दोर चल है।

हल्केराम – *ना रे मतईयां!*
आज को जुग बदल गओ,
स्कूल भेज, मोड़ा खें पढ़ा लिखा,
कम से कम जा पीढ़ी तो न खराब कर।
विद्या में बहुत ताकत होत,
अगली पीढ़ी पढ़ी लिखी हो है,
तो हमाओ तुमाओ भलो है,
अपनो भलो बुरो समझ पाहें।

मतईयाँ – *बात तो सही कहत हो महाराज!*
लेकिन अपने पास न तो इतनो पैसा है,
न खेती बाड़ी सो का करिए,
दो-दो लरकन खें पढ़ाबो सहज तो नईयां।

हल्केराम - *एक ज्वार कम खा ल्यो*

लेकिन स्कूल न छुड़ा और जितनी होत

हम सब एक दूसरे की सहायता करें से कभे पीछे भए।

हल्केराम ने अपने सभी साथियों की तरफ प्रश्नवाचक दृष्टि डाली। सभी ने मुख से सहमति जताई ।

मतईयाँ सिर हिलाते हुए कहा -

हूँ......काए दिन भर पट्टो उचकाऊत फिरत रहत,

कछु पढ़ जैहे तो हमई खें वारो हो जै है।

काल जै हों सो मास्टरनी सें कै हों लिख लें नाम।

सहोदर - *लिखवा दे नाव, पे देख लरका खें*

रीवन ककवारे की कुतिया न बना दैत कि

इतऊं भगाबे औ उतऊं भगाबे,

ढंग से एकई काम में मन लगाउन दइये।

सब जोरदार ठहाका मारकर हंसने लगे।

सहोदर - *सही कहत हों हल्काई महाराज,*

गोकरन दिखो तो कितो अच्छो है पढ़बे में।

इतने में गोकरन ट्यूबवैल से भीग के आ गया था। हल्केराम ने सभी को हाथ से शान्त होने का इशारा किया, सब चुप हो गये, क्योंकि हल्केराम प्रायः कहा करते थे बच्चों की अधिक प्रशंसा उनके मुख पर नहीं करनी चाहिए।

हल्केराम - *ले बेटा जो गमछा लपेट और तुरत घर खें दौर जा।*

गोकरन ने बाबू का गमछा लपेटा कांधे पर गीले कपड़े धरे, खाली डिब्बा लेकर मार्ग में नाचती आम की शाखों पर झूलता, गुनगुनाता चक्के के साथ दौड़ता घर की ओर बढ़ गया।

घर पहुँचते ही गोकरन ने डिब्बा अम्मा को पकड़ाया और बाहर की ओर भागने लगा भीतर से सुदामा चिल्लाई,

रे इस्कूल को काम तो कर ले लरका!

दिन भर उचकत फिरत।

हओऽऽऽऽ अम्मा! चिल्लाता हुआ, गोकरन फिर भाग गया। महली के रेडियो से सभी किशोर आम की बगिया में गाने सुना करते और टोलियों के बीच कभी कबड्डी कभी क्रिकेट के दांव लगा करते थे।

आज कबड्डी पर दांव था, बगीचे में लकीर खींची और फिर शुरू छेल कबड्डी...... कबड्डी... और पेड़ पर लटका रेडियो चिल्ला कर गा रहा था – *आ देखें जरा किसमें कितना है दम!*

धूल उड़ती बगिया में गाँव भर के लड़कों का हुजूम लगा, सूर्य की प्रचण्डता में भी कबड्डी का उत्साह कम न होता था। पसीने और मिट्टी में लिपटी देहें निर्माणाधीन प्रतिमायें सी बिम्बित होती थीं।

तीन घंटे से दांव पे दांव लगे जा रहे थे न कोई हार का पाला छू रहा था न जीत को सांस साधे रहने देता।

सांझ हो चली थी, उधर सुदामा गोकरन की राह ताकती बड़बड़ाती जाती –

ई लरका खां खेल के सिबा कछु नईं दिखात,
बाबू के आएं की बेरा हो गई ईको पता नईयां।

तभी पड़ोस का लेखनीराम निकलता दिखाई दिया, सुदामा ने आवाज लगाई –

अरे लेखनी लाला!
तना गोकरन दिखाबे तो
उसे कह दइयो, बाबू आ गये घरे, खिबई नाराज हैं।'

लेखनीराम – *हओ महाराजिन भौजी कह दे हों।*

वास्तविकता में बचपन ही तो अल्हड़पन की परिभाषा है, न किसी की चिन्ता न फिक्र बस मस्त जीवन का उत्सव मनाता हुआ और जब बाल्यकाल में किशोरावस्था मिश्रित होने लगती है तब तो उसके उत्साह की थाह लेना भगवान को पाने बराबर है। हालांकि शहरी परिवेश

में ये बालजीवन महोत्सव अब भविष्य के विकास की आशाओं तले इस प्रकार दब के रह गये हैं कि उत्सव तो छोड़िये, मुस्कराहट की परिभाषा भी भूल गये।

भूल गये कि बचपन में
खाई माटी से ही ब्रह्माण्ड दर्शन होते हैं,
मनुष्य निर्माण होते हैं ।
खैर परिवेश बदल रहे हैं तो
मायने भी बदल रहे हैं,
कागज की नावों से खेलने वाला बचपन
अब मोबाइल में आँखे गड़ाये
बालक की तस्वीर मात्र बनकर रह गया है,
यही हमारी विकास की पराकाष्ठा है
किन्तु ग्रामीण अब भी इस उत्सव से
वंचित नहीं हुए हैं।

प्रसन्नता और जीवन के वास्तविक दर्शन करने हैं तो ग्राम के सुलभ गलियारों पर कूदते फांदते खिलखिलाते इन नौनिहालों के दर्शन कर लीजिए जी उठेंगे।

॥ 6 ॥

चैत्र गुजर गया घुमड़ते बादलों के साथ सावन ने दस्तक दे दी थी।

बादलों के संगीत मध्य गाँव की चौपाल पर इकतारे की सुरम्य धुन के साथ आल्हा की स्वरलहरियां गूँज रहीं थीं,

अरे हो......

बारह बरिस लौ कूकर जीबै,
औ तेरा लौ जिएं सियार ।
बरिस अठारा क्षत्री जीबै,
आगे जीवन को धिक्कार ।।

तभी दूसरी ओर से एक और सुर चला आ रहा था सबकी दृष्टि उस ओर मुड़ गयी हल्केराम गाते गाते पास आ गये,

अरे.....

मुर्चन मुर्चन नचै बुन्देला,
ऊदल कहें पुकार-पुकार
भग न जइयो कोऊ मोंहरां ते
यारो राखियो धरम हमार।
खटिया पर कैं जौ मरि जैहो,
बढ़िहै सात साख के नाम
रन मां मरिकें जौ मरि जैहो,
होइहे जुगन-जुगन लौ नांव।।
हम तुम रहिबे जौ दुनिया में
इंदल फेरि मिलैंगे आय।
कोख को भाई तुम मारत हौ
ऐसी तुम्हहिं मुनासिब नाय।

दूसरी तरफ से किरपाल ने तान छेड़ी......

भरी दुपहरी सरवन गाइये,
सोरठ गाइये आधी रात।
आल्हा पवाड़ा वादिन गाइये,
जा दिन झड़ी लगे दिन रात।।

पट पट पानी की बूंदे गिरने लगीं, सावन महकने लगा, सबके चेहरे पर जैसे आने वाली फसल तैर गई। बादलों की सरगम पे बूंदे झनन झनन नृत्य करने को आतुर हो उठीं, आज कड़कती दामिनी भी किसानों के मुख की आभा पर भय का क्षुद्रावरण भी नहीं डाल पा रही थी, तड़ित जैसे-जैसे अपना रौद्र रूप ले बिराती वैसे ही उनके मुख पर सुख और नाचने लगता, आखिर किसान की सबसे बड़ी सहोदर तो प्रकृति ही हुआ करती है, फिर आज तो प्रसन्नता की पाती थी जो इन्द्रदेव ने इन किसानों के लिए भेजी थी।

हल्केराम ने 'ॐ नमो इन्द्रदेवाय नमः' कहके कहा -
'लगत है, ई बरस भी अच्छी फसल हो जैहे।'

बगल में बैठे मतईयाँ ने मुँह बिचकाते हुए कहा -
का होत महाराज, कित्ती पिसीया भई ती ई बरस
सो सरकार ने दाम कम कर दये
सो फिर जहीं के तहीं।

हल्केराम - *बात तो सही है भइया,*
लेकिन फिरऊं लरका बिटियां भूखे तो न मर हैं,
येई संतोष में प्रसन्न रहो और का चाहिए।

बरखा बन्द हो गयी मतईयाँ हल्केराम के पास से उठकर अपने घर को चला गया और हल्केराम अपनी पगडण्डी की ओर मुड़ गये।

घर में टिमटिमाती लालटेन के नीचे गोकरन किताबों में आँखें गड़ाये पढ़े जा रहा था। हल्केराम ने अपने पितृत्व स्नेह की कुछ बूंदों से गोकरन के बालों को अभिसिञ्चित किया और पूछा - *क्या पढ़ रहे हो बेटा!*

जबसे गोकरन ने आठवीं में टॉप किया तबसे हल्केराम उससे खड़ी भाषा में बात करने का प्रयास करने लगे थे। आखिर बेटे को एक बड़ा आदमी बनाना था, सरकारी नौकरी करवानी थी।

गोकरन ने बड़ा सहज सा उत्तर दिया – *बाबू! सामाजिक विज्ञान पढ़ रहे!*

हल्केराम – *अच्छा क्या है ? तुम्हारी सामाजिक विज्ञान में, क्या पढ़ रहे हो?*

गोकरन – *बाबू भीमराव अम्बेडकर।*

हल्केराम – *अच्छा बहुत बढ़िया पढ़ो !*

लेकिन बाल जिज्ञासा के पंख बड़े पसरे हुआ करते हैं, उसने अपनी जिज्ञासा की उड़ान का भार अपने बाबू के ज्ञानमण्डल पर डाल दिया।

गोकरन – *बाबू! ये बताओ,*
ये भीमराव अम्बेडकर ऐसा क्यों कहते हैं कि
सवर्णों के कारण दलित उन्नति नहीं कर पाते,
सवर्ण उन पर अत्याचार करते हैं,
हम लोग भी तो सवर्ण हैं,
लेकिन आप तो ऐसा नहीं करते?

इस प्रश्न ने हल्केराम के मुखमण्डल पर हल्की सी हंसी बिखेर दी।

बेटा! ऐसा है, हम तुम्हारे जैसी किताबें तो पढ़े नहीं
लेकिन जो हमने पढ़ा, उसके अनुसार,
जिस प्रकार ये धरती कहीं पहाड़ों को सहेजे है,
कहीं समुद्र, कहीं रेगिस्तान,
कहीं मैदानों को उसी प्रकार ये समाज है,
यहाँ कहीं अच्छे लोग हैं तो बुरे भी हैं,
चाहे वे ब्राम्हण हों, क्षत्रिय हों, वैश्य हों या
शूद्र सभी में अच्छे बुरे की समष्टि होती है।

परन्तु स्मरण रहे जब तक मनुष्य के नेत्रों में
करुणा का जल होता है तभी तक वह मनुष्य होता है,
जिस दिन ये जल सूख गया
वह पशु से अधिक कुछ नहीं,
और ये सभी के लिये है
चाहे वे सवर्ण हों या न हों,
गुणों और अवगुणों में बस
अनुपात एवं दृष्टिकोण का फर्क है।
बेटा! समय अपनी परिभाषायें लिखता चला आ रहा है,
और लिखता रहेगा, न्याय, अन्याय,
पाप पुण्य से बड़ा है जीवन।
हमें तो हमारे कर्म अच्छे करने हैं,
बाकी और कुछ नहीं।

तभी गोकरन की माँ की आवाज आई –

'ब्यारी कर लेओ थरिया परस दई है,
आजई न लरका खें सबरी सिक्षा दै खें
विदेश भेज दईयो, उठ याओ इते खें।'

हल्केराम हंसते हुए कहते हैं –

'चलो बेटा पहले अपने
शरीर के प्रति अपना दायित्व निभा लेते हैं।'

परसी थाली पर पिता पुत्र ने जल घुमाते हुये अन्न को नमन कर खाना आरम्भ कर दिया। सुदामा चूल्हे के सामने बैठी बुदबुदाती है,

'धरम करम...पोथी पत्रन सें पेट नईं भर जात,
घर कैसें चलत चूल्हे वालियन सें पूछों,

अचानक बुदबुदाहट को तीव्रता देती हुई सुदामा गोकरन से बोली –

'देख बेटा जे बाबू की बातें सुनत गुनत
अच्छी बात है, पै एक बात गांठ बांध ले

अपनी जरन सें, कट खैं,
कौनऊं नई जी पाऊत
और ई धरती पे तो पुरखन की जरें गड़ीं,
ईसें बिलग न भइयो कभऊं दुनियादारी चाएं कछु करो।
पत्थरा चाएं जित्ते सजीले होबें
उनसें पेट नई भर सकत,
माटी सें प्रेम जीवन देत जो हमेसा याद रखियो।

हल्केराम – *बेटा! ये बात तो तुम्हारी अम्मा!*
बिल्कुल सही कही। आजकल लोग
मिट्टी को भूल पत्थरों की ओर भागते हैं
फिर दोष इस धरती और आकाश को देते हैं।

गोकरन ने अम्मा बाबू का मुख देख मुस्कराते हुऐ नेत्र सहमति प्रदान की ।

तभी दरवाजे पर सांकर बजती है – *महाराज ओ महाराज!*

हल्केराम ने थाली को प्रणाम कर किवाड़ खोले। मतईयाँ अपने लड़के लुट्टन को खून से सना अंगोछा ओढाए, रोता हुआ धड़ाम से गिर पड़ा।

हल्केराम व्याकुलता से – *अरे ! का हो गओ रे,*
जो लुट्टन काए अचेत परो है?

मतईयाँ (मस्तक पीटता हुआ)– *महाराज!*
महली और ईमें लड़ाई हो गई और
ऊने इखें मूड़ पे भारी पथरा दै मारो।
डाक्टर खैं लै जाएं के लाने
एक रूपैया नैंया, मदिद कर दो।

हल्केराम व्यग्रता से बिना कुछ बोले अपने खलीते में कुछ तलाशने की कोशिश करन लगे, लेकिन छूंछी जेब से रिक्त हाथों की मुट्ठी बना निकाल ली फिर सुदामा की ओर अनुरोध भरा दृष्टिपात्

किया, पति–पत्नी सम्वाद अधिकांशतः नेत्रों से ही हुआ करते हैं, कुछ प्रश्न तो थे लेकिन फिर भी सुदामा ने गेहूं के मटके में बचा के रखे तीन सौ रूपये मतईयाँ को लाकर दे दिये।

कृतज्ञता प्रेषित करता मतईयाँ बाहर निकल गया साथ में हल्के महाराज भी। गोकरन सहमा सा जैसे किसी चिन्तन में डूब गया। आज फिर धन की बिलखन को उसने साक्षात् देखा था।

घर में कितनी भी तंगी हो उसके अम्मा बाबू उसके ऊपर उस तंगी की निर्मम छाया कभी न पड़ने देते थे किन्तु जीवन कब छायाओं से विहीन हुआ है, कभी न कभी उसके दुर्दान्त प्रतिबिम्बों को सामने आना ही होता है और गोकरन के जीवन में ये पटकथा तो लिखनी काकी की बीमारी के समय से ही आरम्भ हो चुकी थी।

कदाचित् युवा बुद्धि स्वभावतः अन्वेषणी हुआ करती है और इस अन्वेषण का आरम्भ अपनी बखरी से ही आरम्भ होता है। चंद्रमा अपनी यात्रा पर चलता चला जा रहा था, पुस्तकों के सवर्ण को अपने पिता से सम्बद्ध करता रहा, लेकिन इतिहास का एक अंशमात्र उसे पिता में न दिखाई देता था, उन्हें तो सदैव अपनी हानि से बढ़कर दूसरों की सहायता प्रिय हुआ करती है, जीवन और किताबों में इतना भेद कैसे? मैं किसे सत्य मानूं इन बेजान शब्दों को या मेरे पिता को?

रात भागी जा रही थी, अन्धेरा गाढ़ा होता जाता था, लेकिन गोकरन की नींद तो पिता के इन्तजार में देहरी पर बैठी उनके आने की प्रतीक्षा कर रही थी।

रात का एक पहर बीत गया। हल्केराम ने धीरे से आवाज लगाई, गोकरन की अम्मा! ओ गोकरन की अम्मा! सुदामा जाग रही थी, झपट उठी और किवाड़े खोल दिये।

सुदामा – *का भओ.. ? कैसो है लुट्टन.. ?*

जिह्वा कुछ न कहना चाहती थी, लेकिन हल्केराम के मुखमण्डल ने सारी घटना पर पड़े चिथड़े भी उठा दिये।

हल्केराम – *नईं रहो लरका,*
डॉक्टर ने कही दो हजार ल्याओ,
मतईयाँ जैसई दौरो उसई लरका ने प्राण छोड़ दये,
खून ज्यादा बह गओ तो, खोपड़ी फट गई थी,
गोकरन खें कछु न कहियो,
लरका आए घबड़ा न जाए।

मूक सहमति दे सुदामा अपनी खटिया पर पड़ गई। हल्केराम गोकरन के साथ लेट गये। अपने बच्चे के माथे पर हाथ फेरते आसमान ताकते रहे मानो ईश्वर से प्रश्न कर रहे हों कि आखिर उस नौनिहाल की मृत्यु का कारण कौन था वो बाल झगड़ा या फिर निर्धनता?

आँखें बुझाए गोकरन के कान तो जाग ही रहे थे, अब मस्तिष्क में एक ओर पिता के धर्म वचनों की गूंज हो रही थी दूसरी ओर धन की अल्पता कराह उठी थी।

आज रात भर गोकरन धर्म और धन को तौलने में लगा रहा, इस तौल में कहीं न कहीं धन भारी पड़ा जाता था किन्तु फिर भी अन्तर्मन से धर्म विलग होने को तैयार न था। इसी अन्तर्द्वन्द्व में भोर के विलाप में राम नाम सत्य है, गूंजने लगा।

॥7॥

इस साल एक वर्षा के बाद पूरा सावन, भादौं बरखा की बूँदों का पथ निहारता चला गया, चातक प्यासे के प्यासे टांय-टांय करते पूरे गाँव में फिरते थे। इन हरियाली के महीनों में भी धरती चटक रही थी। भूखे प्यासे पशुओं के रम्भाने का कोलाहल चतुर्दिक् गूंजता रहता था।

आज पहली बार गोकरन ने बाबू के मुख पे चिन्ता की लकीरें देखी थीं। मन्दिर के कुऐं से सिंचाई करके खेतों को बीज तो दे दिये थे, लेकिन अब बीजों के पोषण के लिए कुऐं ने भी पानी देने से इंकार कर दिया। गाँव में भीषण संकट आन पड़ा था, लगातार दूसरा वर्ष था जब इन्द्रदेव रुष्ट बैठे हुए थे।

गोकरन अट्ठारह का हो चला था, अब गाँव के पास के कस्बे के स्कूल जाने लगा था, मतईयाँ का छोटा बेटा छुट्टन भी गोकरन के साथ ही स्कूल जाता था।

दोनों साथ जाते, खेलते, पढ़ते उनकी दोस्ती की पूरे गाँव में चर्चा हुआ करती थी। स्कूल में एक ही कक्षा में पढ़ते थे, गोकरन अपनी कक्षा के प्रथम श्रेणी में आने वाला छात्र था, वहीं छुट्टन मासिक परीक्षाओं में भी मुश्किल से पास होता, गोकरन उसकी पढ़ाई में पूरी सहायता किया करता, स्कूल के बाद गोकरन उसे गणित, अंग्रेजी जैसे विषयों को स्वयं पढ़ता उसको भी पढ़ाता।

गोकरन ने ग्यारहवीं की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की वहीं छुट्टन बस पास ही हो पाया था।

इधर दो साल से खेतों की प्यास न बुझी थी अतः हल्केराम की स्थिति भी कुछ अच्छी न थी, चूल्हे का शृंगार भी मुश्किल हो रहा था। सरकारी मदद के नाम पर उन्हें आज तक कुछ नहीं मिला था। कई बार सुबीते सिंह प्रधान के पास सरकारी सहायता की बात करने का प्रयास किया तो उत्तर कुछ ऐसे ही मिलते थे -

'अरे महाराज! सवर्ण ई योजना के अन्तर्गत नईं आऊत।' या फिर *'अरे पण्डित जी! तुम औरन खैं का जरूरत मदद की।'* इस प्रकार सवर्ण नाम का तमाचा मारकर उनको बिदा कर दिया जाता। उन्हें क्या पता था निर्धनता, पीड़ा, भूख और व्याधियों को भी अब जाति प्रमाणपत्रों की आवश्यकता होती है।

अब गोकरन बारहवीं में आ गया था, स्कूल की फीस, किताबों का खर्चा, हल्केराम को परेशान कर रहे थे, स्कूल में प्रवेश की तिथि भी निकली जा रही थी क्या करें? पैसे कहाँ से लायें? हल्केराम को कुछ न सूझता, खेत में जो अन्न हुआ, दो जून के रोटी के लिए ही पूरा न था।

हल्केराम निर्णय न कर पा रहे थे, उस अन्न से रोटी की जुगत करें या फिर बच्चे की पढ़ाई के लिए बाजार में बेच दें, लेकिन भूख से बड़ा क्या भगवान और क्या ज्ञान? किन्तु बच्चे की शिक्षा भी उतनी ही आवश्यक है, जितना पेट के प्रति कर्त्तव्य; क्या युक्ति करें? बच्चे को पढ़ाना है, तो पैसे भी चाहिए। कैसा धर्मसंकट आन पड़ा है?

अन्ततः फिर हल्केराम ने सुदामा की तरफ अनुरोध दृष्टि डाली, अबकि सुदामा के गेहूं का डबला भी छूंछा था, लेकिन फिर भी स्त्री अपने स्वजनों की पीड़ा का हरण करने का सामर्थ्य रखती है।

अपने सन्दूक मे पड़ी गले की जंजीर उसका एक मात्र सोने का जेवर, जो उसकी सास ने उसे ब्याह में दिया था जिसे वो अक्सर गाँवों में होने वाले उत्सवों के समय पहना करती और अपने नारीत्व पर मान करती फूली न समाती थी। आज उसकी बारी आ गई थी।

जंजीर लाकर सुदामा ने हल्केराम के हाथ पर रख दी और बिना कुछ बोले अपने काम में लग गई।

हल्केराम उस जंजीर मे जैसे अपना भविष्य और भूतकाल एक साथ देख रहे थे, कोई कड़ी सुदामा के मुख की चमक को संजोए थी तो कोई उसके अम्मा के आशीर्वाद को, लेकिन अब इस आशीर्वाद और चमक के जाने का समय आ गया था, उस अन्तिम जेवर के जाने की

पीड़ा अवश्य थी किन्तु बेटे के भविष्य के लिए माता पिता अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को सहज ही सज्ज हो जाया करते हैं।

किवाड़ों की बाहरी ओट से झांकते हुए माता पिता की यह यथार्थ ज्वलन गोकरन को पिघला पिघला कर बिखेर रही थी। एक बार फिर वही धर्म और धन का तुलनात्मक प्रयोग उसके समक्ष आँखें बिराता सा खड़ा था।

वह स्वयं को नि:सहाय बिना हाथों का सा महसूस करता खेतों की तरफ निकल गया। आज हवा भी जैसे उसके कानों में आके कह रही थी धन ही सब कुछ है, लेकिन पिता का पाठ उस हवा से द्वन्द्व करता चला जा रहा था।

जंजीर बिक गई चार हजार मिले, दो हजार में गोकरन की फीस और किताबों का खर्चा पूरा हो गया। इस बार गोकरन पर ये पैसे काल से भी अधिक भारी पड़े थे, माता-पिता के संताप की अग्नि ने मानसिक विप्लव को जन्म दे दिया था।

हल्केराम संतुष्ट थे आखिर सन्तान की शिक्षा माता पिता का प्रथम दायित्व होता है और कल कुछ बन जाएगा तो इन पैसों का मोल दस गुना बढ़ जाएगा। बचे दो हजार हल्केराम ने गोकरन की आगे की पढ़ाई के लिए सम्हाल के रख दिये सोचा जो एक-एक रुपये बचाएंगे तो भी धन जमा हो ही जाएगा।

इधर अनमना सा गोकरन स्कूल के लिए छुट्टन को बुलाने उसके घर गया था, छुट्टन ओ छुट्टन स्कूल नईं चलनें का?

छुट्टन का मन वैसे भी पढ़ाई में न लगा करता था, उसने बड़े हर्ष के साथ गोकरन को सूचित किया कि आज से वो स्कूल नहीं जाएगा। गोकरन का एकमात्र मित्र था, छुट्टन उसके न जाने से उदास गोकरन पिता के पास पहुँचा और बताया छुट्टन ने पढ़ाई छोड़ दी है।

हल्केराम को इस बात से हैरानी न हुई, वे समझ गये थे कि जिस समस्या ने उनके समक्ष मुँह खोला था, वही मतईयाँ के आंगन की पीड़ा है, हल्केराम ने गोकरन से कहा तुम स्कूल जाओ हम बात करेंगे,

देखेंगे, तभी वहाँ से गुजरता मतईयाँ दिखाई पड़ गया, हल्केराम ने आवाज दी –

मतईयाँ सुन तो.....
हाँ महाराज! मतईयाँ पास आके बोला,

हल्केराम ने पूछा – *अरे छुट्टन को स्कूल काए छुड़ाऊत?*

मतईयाँ – *महाराज! पूरे दो हजार को खर्चा है,*
कहाँ सें ल्याएं, आसौं फिर सूखा है
बताओ का करों और उसई ऊ
पढ़त लिखत ढंग से है नईयाँ,
खचुर खचुर पास होत।

हल्केराम – *समय के साथ सब ठीक हो जाएगा*
लेकिन पढ़ाई न छुड़ाओ,
पईसा चाहिए तो हमसे लैजा।'

हल्केराम ने आत्मीयता से उसके कांधें पर हाथ रखकर कहा। मतईयाँ कुछ न बोला लेकिन उसकी चुप्पी उसकी सहमति का प्रमाण थी। हल्केराम ने गोकरन के लिए बचाए रूपये मतईयाँ के हाथ में रख दिये और कहा – *लड़के को स्कूल भेजो कल से।*

हल्केराम के बालपन के समय गाँव मे स्कूल ही कहाँ थे जो स्कूल जा पाते लेकिन उन्होंने वेद पुराणों की शिक्षा अपने पिता से ली थी, दिन रात मेहनत करके ज्ञान अर्जित किया था किन्तु फिर भी विद्यालय न जा पाने की पीड़ा आज भी उनके हृदय को त्रास पहुँचाती रहती थी।

आज की कुटिल दुनिया की रवायतें भले उनकी समझ से परे थीं लेकिन अपनी कर्त्तव्यपरायणता के लिए वे प्राण भी देने के लिए सहज सज्ज रहा करते थे, कदाचित् इसलिए किसी बच्चे को बिना शिक्षा के रह जाना उन्हें उनकी कर्त्तव्यपरायणता पर लाञ्छन सा प्रतीत होता और विशेषत: जब बच्चा उनके गाँव का हो।

मतईयाँ पैसे उठाए, हल्के महाराज को प्रणाम करके कच्ची सड़क पर निकल गया।

किवाड़ों की ओट में खड़ी सुदामा बोल पड़ी –

तुमाए घरे तो कुबेर गड़ो।

हल्केराम मंद-मंद मुसकराते हुए बोले –

ऐसा क्यों बोलती हो,
शिक्षा प्रत्येक बच्चे का अधिकार है,
मैनें उसकी पूर्ति के लिए थोड़ी सहायता कर दी
तो क्या बुरा किया।

सुदामा (रूखे स्वर में) –

कल जब तुमाए लरका की बारी आ है
तब कहां से ल्याहो धन?

हल्केराम धीरे से बोले सब आ जाएगा और उठकर चलने को हुए तभी सुदामा बड़बड़ाते हुए बाहर आ गई और बोली–

एक दिन ये गाँव वाले
तुम्हें हेरें तक खें न ठाड़े हो हैं,
हम अकेले महात्मा बनकें मरत फिर हैं।

संभवतः स्त्रियों की छठी इन्द्रिय भविष्य को पूर्व ही सूंघ लिया करती है। इस नारीत्व भरी भविष्यवाणी को सुनकर, हल्केराम प्रसन्नचित हो बोले–

'भविष्य के विवर्ण तम को किसने देखा है,
यदि कुछ न भी रहेगा तो
अपने त्याग का अभिमान तो साथ जाएगा कि नहीं।'

छुट्टन का भी स्कूल में प्रवेश हो गया, गोकरन और छुट्टन फिर से स्कूल जाने लगे। दोनों अपने में ही मस्त रहने वाले छात्र थे, अपनी पढ़ाई खत्म करते और गाँव की ओर भागते, शाम को प्रायः कबड्डी का दांव जो रहा करता था।

आज कक्षा में कक्षाध्यापिका ने बताया कि जो भी गरीब छात्र हैं, वे वजीफे का फॉर्म लेकर भर के जमा कर दें, इस साल पहली बार गोकरन और छुट्टन ने ऐसे किसी सरकारी फॉर्म के बारे में सुना था।

दोनों मित्रों ने विह्वल नेत्रों से एक दूसरे की ओर देखा और छुट्टन भाग कर दो फॉर्म ले आया, दोनों फॉर्म भरते जाते और बातें करते जाते कि इस पैसे से क्या क्या करेंगे, छुट्टन ने अपनी सारी योजनाएं बता दीं –

'गोकरन मैं तो ई पैसन सें साईकिल लै हों,
अपन येई पे आए कर हैं,
काए हैं न? तुम का कर हो?

छुट्टन के इस प्रश्न से गोकरन ह्रदय में पड़ी माँ की बिकी जंजीर की गांठ को खुलता सा महसूस करने लगा, प्रसन्नता से भरा गोकरन फूला न समा रहा था, मन ही मन बुदबुदाता जाता कि अम्मा बाबू को बाद में बताऊंगा, जब पैसे मिल जाएंगे।

दोनों ने अपने फॉर्म भरे और स्कूल के बड़े बाबू के कार्यालय मे पहुँच गये।

छोटे से कमरे में चरमराती कुर्सी, टेबल के सामने छात्रों की एक लम्बी सी पंक्ति, बाबू जी नाक पे चश्मा धरे सबके फॉर्म चेक करते और गलती होने पर झल्लाते जाते। छुट्टन का भी फॉर्म चेक हो गया जमा हो गया। गोकरन को बाहर मिलने का इशारा करते हुए छुट्टन निकल गया।

गोकरन का उत्साह आज आकाश में उड़ा-उड़ा फिर रहा था, पंक्ति में सबसे पीछे खड़े गोकरन ने इस आधा घण्टे में अपने स्वर्णिम भविष्य के ढेरों सपने बुन डाले थे, पढ़ने मे होशियार था ही, तो कोई परीक्षा उसे कैसे डराती, अतः इतनी ही देर में गोकरन एक बड़ा अधिकारी बन गया था, सारी समस्याओं का निदानकर एक सुखी समृद्ध जीवन की ओर अग्रसर हो चला था।

तभी आवाज आई, *हाँ भई! अगले आओ.....*

गोकरन ने अपने स्वप्नलोक से बाहर आकर झट से बड़े बाबू की टेबल पर अपना भरा फॉर्म रख दिया, बड़े बाबू ने जैसे ही फॉर्म पे निगाह डाली, जोर से नाम पढ़ा –

गोकरन.... तिवारी........ हो तुम?

गोकरन ने हाँ मे सिर हिलाया तो बड़े बाबू जोर से ठहाका मारकर हंस पड़े और बोले –

लीजिए भई अब पण्डित जी भी वजीफा लेंगे।

चारों ओर ठहाकों की आवाज गूंज गई, गोकरन समझ न पाया था कि आखिर उसके फॉर्म में ऐसा क्या है जो सभी हंस पड़े।

अभी तो अपने घर से निकलकर बाहरी दुनिया में आया था गोकरन सामाजिक और सरकारी दाव पेंचों से उसका पाला ही कहाँ पड़ा था, असंख्य प्रश्न उसको उद्वेलित करने लगे, वो भी तो गरीबी में पलकर बढ़ रहा था, उसे भी तो सहायता चाहिये, जब सरकार सबकी सहायता कर रही है तो उसके साथ ऐसा व्यवहार क्यों?

आखिर उसने हिम्मत करके पूछ लिया –

क्यों बाबू जी ऐसा का है,
आपने सबके फॉर्म तो ले लिये,
हम भी तो छुट्टन के गाँव के हैं
और हमाए बाबू के पास भी तो तीनई बीघा जमीन है,
फिर ऐसा क्यों कह रहे आप?

बड़े बाबू ने कहा – *अरे पण्डित जी!*
जनेऊधारियों को सरकार वजीफा नहीं देती।

गोकरन – *कुछ समझे नहीं बड़े बाबू जी?*

सरकारी बाबू झल्लाते हुए बोला –
अरे! सवर्णों के लिए बजीफे नहीं होते।
चलो भागो यहाँ से हमें और भी काम हैं।

गोकरन के पैरों तले से जैसे जमीन खिसक गई, अभी आधे घण्टे में ही उसके देहधारी स्वप्न अदेह यथार्थ में परिवर्तित हो गये। कल्पना की छतों पर वह कैसा भागा जा रहा था, सहसा ये कौन सा पर्वत उसकी मेधा के समक्ष सीना ताने खड़ा हो गया, कुछ समझ न पा रहा था।

आखिर बाबू द्वारा दी गई शिक्षा क्या बस बातों की थी।
वे तो मानवता, करूणा, दया की बात करते थे।
बिना किसी का मुँह और नाम देखे
सभी की सहायता करने को कहा करते थे
और आज मेरे ही नाम ने
मेरी सहायता करने से इंकार कर दिया,
ये समाज का कैसा दोगला रूप है?
जी चाहता था जाए और बाबू से कहे
आप जो कहते थे सब गलत है।
यहाँ मुँह और नाम देख के ही सहायता की जाती है।

गोकरन आधे घण्टे तक जड़वत खड़ा रहा, बार-बार उसकी आँखों के सामने अम्मा की आखिरी बिकती जंजीर, बाबू का बेबस चेहरा घूम रहा था।

तभी छुट्टन ने पीछे से गोकरन के कंधे पर हाथ धरा और हंसते हुए कहा *जमा हो गओ फॉर्म।*

गोकरन ने विषभरे नेत्रों से छुट्टन को देखा और उसका हाथ झटके से हटा कर अपनी कक्षा से बस्ता उठाकर बस स्टैण्ड की ओर पहली बार अकेला ही चल दिया। आज उसे सवर्ण होना अपमान सा लग रहा था।

विधि की कैसी विडम्बना है? ये कैसा भेद था? उसके सरल मन की समझ न आ रहा था। कल तक जो मित्र साथ न होता तो उसे ढूंढने पूरे गाँव में पूछता फिरता, महली से अगर दोनों में से किसी का भी झगड़ा होता तो दोनों एक दूसरे की ढाल बनकर खड़े हो जाते थे,

आज उसी मित्र से ये कैसी घृणा हो चली थी, इस एक पत्र ने ये कैसी लकीर खींच दी थी?

गोकरन और छुट्टन साथ तो जाते लेकिन अब गोकरन चुप्पी साधे रहता, गाँव में भी उसके साथ न खेलता, न जाने क्यों गोकरन स्वयं को छुट्टन के समक्ष अपमानित सा समझने लगा था उसका हृदय तो कहता सब छोड़ दे पढ़ाई लिखाई, लेकिन फिर बाबू के स्वप्न आँखों में तैर जाते, परन्तु मन ने अब विद्रोह करना आरम्भ कर दिया था और जब मन विद्रोह पर उतर आए तो कोई अस्त्र काम नहीं आता पूरा समाज त्रास से अधिक कुछ नहीं लगता हर कोई आपका विरोधी प्रतीत होने लगता है।

जैसे तैसे साल समाप्त होने को आया परीक्षा का समय आ पड़ा था। अबकि गोकरन ने छुट्टन को न तो पढ़ाया और मिलना जुलना भी न के बराबर कर दिया था, अपनी हार से विचलित गोकरन चाहकर भी अपनी पढ़ाई में पूरा ध्यान न लगा पाता था। आखिर आधे अधूरे मन से उसने परीक्षा दे दी, परिणाम बहुत अच्छा तो नहीं किन्तु द्वितीय श्रेणी में पास हो गया और छुट्टन फेल हो गया।

सबेरे-सबेरे मतईयाँ हल्केराम के पास आकर बैठा था, दोनों तम्बाखू रगड़ते बच्चों के भविष्य की बातें कर रहे थे, गोकरन बाहर जाने के लिए निकला लेकिन मतईयाँ को देखकर फिर भीतर खाट पर पड़ गया।

मतईयाँ – *देखो तो महाराज!*
ई बरस गोकरन ने पढ़ाओ न सो लरका फैल हो गओ।'

हल्केराम – *गोकरन पास तो हो गया*
पर नंबर ज्यादा अच्छे नहीं आए।
लेकिन पता नई दोनऊं कौनऊ बात पे लड़ गये
जाने का अब पहले जैसे संगे नई रहत।

मतईयाँ सहज भाव से कहा – *लरका आएं*
अपन खें का करने सब सुरझत रै हैं।

हल्केराम ने सहमति जाहिर की और कहा –

'फेल हो गओ तो स्कूल न छुड़ा दइये।'

मतईयाँ ने सिर हिलाते हुए कहा –

'न छुड़ा हौं पाछें साले तो
सरकार ने पैसा दओ तो ऊ का कहत बजीफा,
सो पैसा को इंतजाम हो जैहे।'

हल्केराम ने प्रश्नवाचक लहजे में कहा – *बजीफा?*

मतईयाँ – *अरे हओ महाराज! सुनत हैं.....*
सरकार पढ़े वाले गरीब लरकन खैं पैसा देत।

हल्केराम अपनी समस्या का निदान समझ इस विषय में और जानने के इच्छुक हुए और बोले – *तो गोकरन खैं मिल है का?*

मतईयाँ ने कहा – *पता नईं महाराज! पै छुट्टन बताऊत तो कि गोकरन ने भरो तो हतो फारम।'*

हल्केराम ने विस्मय से पूछा – *अरे हमें तो नईं बताओ।*

मतईयाँ कुछ देर चुप रहा और बोला –
अब चलों महाराज ढोरन खैं कटी करने, राम राम......।

हल्केराम – *राम राम....।* मतईयाँ वहाँ से निकल गया।

हल्केराम के मन में वजीफे वाली बात खटक गई थी, भीतर जा के गोकरन से कहा *'बेटा कोई फार्म भरा था क्या?'*

भीतर से गोकरन मतईयाँ और पिता की बातें सुन ही रहा था सो पिता का प्रश्न समझने में देर न लगी। वो इस बात से स्वयं को अपमानित महसूस करता था, इसीलिए इस व्याधि से भागा फिर रहा था, पिता ने फिर वही सवाल दोहराया।

पूरे समाज से भाग सकता है किन्तु पिता से कैसे भागे ? गोकरन कुछ देर छत निहारता रहा और फिर सारा किस्सा पिता को सुना दिया।

हल्केराम बच्चे के समक्ष मुस्कराए और बोले –

अच्छा तो इसी कारण इतने दिनों से कटे-कटे से हो
और छुट्टन से भी बात नहीं करते।
बेटा! इसमें छुट्टन का क्या दोष,
धन को कभी सम्बन्धों के मध्य नहीं लाना चाहिए।
तुम गलत हो... जो हुआ उसे भूल जाओ
ऐसे न जाने कितने प्रश्न तुम्हारे सामने आएंगे
कब तक और किस-किस से भागोगे,
जो सामने आए उसे स्वीकार करके आगे बढ़ो।

गोकरन पिता का मुख ताक रहा था, पूछना चाहता था कि यदि आप धन को महत्त्व नहीं देते तो क्यों हर बार धन के समक्ष आप हारे हुए खड़े हो जाते हैं। किशोरावस्था विद्रोह की ही होती है, सदैव प्रश्नों का विप्लव मस्तिष्क एवं हृदय को तपाता रहता है ऐसे में ईर्ष्या की वृहद्व्यापकता ही साम्यवाद की सर्वप्रियता का कारण बनती है।

समय बीत गया नए साल नई कक्षा में प्रवेश की बारी आ गई थी। लेकिन घर में एक पैसा न था। हल्केराम चिन्ता में डूबते जा रहे थे, घर में इतना पैसा नहीं कि बच्चे को आगे पढ़ा सकें और उसकी मेधा को यदि उचित राह न मिली तो कहीं भटक न जाए, ये सोच-सोचकर हल्केराम आधे हो चले थे, अब कोई मार्ग बचा था तो वो था जमीन बेचना।

हल्केराम सुदामा से सलाह लेने का साहस न जुटा पा रहे थे। हल्केराम ने विचलित स्वर में कहा –

'गोकरन की अम्मा का करें, कहाँ से ल्याएं पैसा, जमीन.....?'

बीच में रोकते हुए सुदामा झल्लाई –

'जमीन को नांव न लै लइयो धोखे सें,
मैंने आज तक तुमाओ हाथ नईं पकरो कभऊं....
लेकिन जमीन की बात न कर दइयो,
कह दई मैंने।'

हल्केराम – *'अरे सुनो तो!*
अपनी सन्तान के भविष्य को सवाल है,
कोऊ और के लाने थोड़ी कहत,
पढ़ लैहे तो अच्छी नौकरी मिल जै है।'

चूल्हे पे बैठी सुदामा ने चिमटा पटकते हुए कहा –
'का जिमानत है कि नौकरी मिल जै है,
बड्डे दादा ने तो
जमीनें बेंच बेंच पढ़ाओ हतो लरका खें
लेकिन मिली नौकरी?
नई न, का करत आज?
फड़ पै बैठो जुआ, खेलत,
इखें हटकारत उखें मारत फिरत।'

हल्केराम सुदामा के समक्ष तर्कहीन हो गये –
'बात तो सही कहत गोकरन की अम्मा,
सरकारी नौकरी हमें औरन खें कहाँ धरीं।'

इन सामाजिक व्यंजनाओं से अब हल्केराम अच्छी तरह परिचित हो चले थे लेकिन फिर भी सन्तान की शिक्षा के प्रति अपने दायित्वों से आँखें नहीं मूंद पा रहे थे।

गहरी सोच में डूबते हल्केराम ने करवट बदल ली, सोने का लाख प्रयास करते रहे लेकिन भविष्य की भयावहता का अंदेशा उन्हें सोने न देता, एक तो गाँव का बिगड़ता वातावरण, ऊपर से गोकरन का बढ़ता रोष।

गोकरन भी पिता की व्यथा को देखता सुनता जा रहा था लेकिन निर्णय न कर पाता कि आखिर कहे तो क्या कहे। कभी तो उसका जी करता कि जाकर बाबू से कह दे, खोखली हैं तुम्हारी बातें, यहाँ स्वयं की सहायता सर्वोपरि है, यदि आपने ऐसा किया होता तो आज मैं भी आगे पढ़ रहा होता लेकिन पितृधर्म उसके तर्कभरी वाणी पर बेड़ियाँ डाल देता।

आखिर तमाम द्वन्द्वों से जूझते गोकरन ने पिता से कह ही दिया, अब आप मेरे लिये व्यथित न हों, मैं अब आगे नहीं पढ़ूंगा।

आज हल्केराम के ऊपर जैसे पहाड़ टूट पड़ा हो, उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि वो अपनी इकलौती सन्तान को शिक्षा भी न दे सकेंगे।

कुछ न कह सके हल्केराम, आखिर सन्तान के भविष्य के निर्माता माता पिता ही होते हैं।

'जीवन भर दायित्वों को
शिरोधार्य करके चलता रहा
आज उसके अपने बेटे का
दायित्व पूर्ण करने में असफल हो गया......
उनकी व्यथाओं की धारा
जिसे आज तक वे अपने धैर्य से सहेजे थे
आज सवेग उनकी दृढ़ता के पत्थरों को
ठुकराती निकल गई।'

॥8॥

गोकरन ने पढ़ाई छोड़ दी, पिता ने संस्कृत पढ़ने का प्रस्ताव दिया था तो उसने कहा जब पढ़ना ही नहीं तो फिर क्या संस्कृत क्या अंग्रेजी, कुछ नहीं पढ़ना मुझे। आज विद्या मुझे मेरा परिहास करती प्रतीत होती है, अब ये परिहास सहने की मुझमें और शक्ति बाकी नहीं रही।

पिता ने भी युवा होते बेटे को अधिक दबाव देना उचित न समझा। गोकरन अब खेती सम्हालता और हल्केराम गाँव के एक दो घरों में पुरोहिती कर आते, वैसे पूरा गाँव बड्डे महाराज से पूजा पाठ आदि कराता था और हल्केराम उन्हें अपने बड़े भाई के समकक्ष समझते थे इसीलिए इस क्षेत्र में अधिक हस्तक्षेप न करते।

इस गाँव में कष्टों का सूर्य कितना भी रोष भरा हो किन्तु सन्ध्या के समय प्रेम और प्रसन्नता स्वयं ही नृत्य करने आकाश से उतर आया करतीं, लोग चौपाल पर जमा होते रामचरितमानस का पाठ होता, प्रश्नोत्तर होते, लोकगीत होते, ढोलकें हंसती और मंजीरे, खंजरीं, इकतारे झूम-झूम के अलौकिक स्वरों का निर्माण किया करते थे। सभी एक दूसरे के सुख-दुख बाँटते, खेती किसानी जैसे मुद्दों की चर्चा होती, हंसी ठिठोली होती और राम राम करके सभी अपने घरों की ओर चले जाते। ये लगभग प्रतिदिन का नियम था।

लोग यहाँ आकर अपनी सारी व्यथाओं को पीछे छोड़ देते थे। हल्केराम को ये स्थान सदैव जीवन जीने की स्फूर्ति देता था। इस चौपाल पर सम्बोधन भले ही कुछ होते हों लेकिन सभी के अन्त में भईया का उच्चारण अवश्य होता था। प्रेम, सहानुभूति, त्याग, सहयोग यही तो ग्रामीणों की पूंजी होती है, मानवता के भी तो यही प्रधान उपकरण हैं। किसी के दुख में सहानुभूति कांधे पे धर देना और प्रसन्नता में साथ नृत्य कर लेना। रोटी दाल खाना हो या फिर उसके लिए लड़ना, गाँव की पवन में सब कुछ साझा, निष्कलंक स्वच्छन्द हुआ करता है।

लेकिन अब यही साझी पवन सहसा विपरीत बहती हुई सी प्रतीत होने लगी थी। अप्रैल की समीर में हलाहल की तीव्रता महसूस हो रही थी। प्रदेश में विधानसभा चुनाव का शोर अपने पूरे उत्कर्ष पर था, पूरे गाँव में एक पखवाड़े से हल्ला मचा था, बाहर गाँव की जमीन समतल कर दी गई थी, सीमेंट का मंच बन गया, पूरे गाँव के लिए ये चहलपहल कौतुहल बनी हुई थी, तालाब पर गुच्छे के गुच्छे लोग जमा होकर खुसरफुसर करते, आए दिन बँटने वाले पर्चों पर चर्चा, नेताओं के चेलों की बातों को तौलते दिखाई पड़ते थे।

सूर्य भगवान अभी पूरी तरह नहीं जागे थे, अन्धेरे से लिपटी नौनिहाल दीप्त किरणें हल्का-हल्का उजाला करती जा रही थी। गोकरन कान में जनेऊ लपेटे खेतों से निकला ही था कि भुनसारे से ग्रामीणों के गुच्छे के साथ भिन्ने और मतईयाँ दिखाई पड़े, उनकी वाणी की तीव्रता दूर से महसूस की जा रही थी, गाँव के भीतर अक्सर ये झुण्ड खुसर-फुसर करते दिख जाया करता था लेकिन गाँव के बाहर उनकी बातें सुनने का भय भी न था, सो सबके स्वछन्द विचारों का आवेग वाणी को कम न करने पाता था।

मुँह में दातून को लिरबराते हुए पिच्च से जमीन पर थूककर किरपाल ने कहा- *'सुनत हैं भईया बड़े नेता आऊत हैं।'*

मतईयाँ - *हाँ भइया! सुनो तो है...*
पै एक बात ध्यान दई कोऊ ने
आसों इते की गैल कैसें धर लई।
पाछे के चुनाव में तो
कोनऊ बड़ो नेता न आओ तो।

तभी भिन्ने ने बीड़ी का धुआँ निगलते हुए चारों ओर देखा और धीरे से कान में फुसफुसाया -
ई साल सुबीते पिरधान खें
विधायकी को टिकस मिलत थे,
सो ओई ने बुलवाओ है।'

लेखनीराम – *सही कहत रे भिन्ने!*
सुनो तो महूँ ने है, कहत हैं
झोला भर नोटन सें पूज याये
तब टिकस मिलत है बिधायकी को।

मतईयाँ अपनी बांछें उचकाता हुआ बोल पड़ा–
अरे जो सब तो ठीक है,
मोखें तो लगत पछारीं बरसें
शम्भु कोरी और सम्पत नें
खेतन फांसी में लगा लई ती,
कितनी पुलिस और नेता परे रहे ते अपने गाँव में,
तभई सें सिबाब पै है अपने गाँव कौ नांव।

लेखनीराम ने स्मृति की धूल को फूंक मारते हुए कहा –
सुकुल के लरकऊ ने तो फांसी लगा लई ती।

किरपाल – *हओ सुकुल के खेतन में आगी लग गई ती।*

मुँह बिचकाकर आँखें मटकाते हुए मतईयाँ ने कहा –
येई सुबीते पिरधान ने तो लगवाई ती।

किरपाल – *हूँ...*
ऊ की जमीन लैबे खैं फिरत हते सुबीते सिंह
और सुकुल बैंचें के लाने राजी न होत तो
सो आगी लगवा दई, कर्जा अलग हतो बैंक को,
न बरदाश्त कर पाओ लरका और फांसी लगा लई।

भोर की लाली बढ़ती चली आ रही थी, सूर्यरश्मियाँ युवा हो चली थीं, सुनहरा प्रकाश वेग पकड़ रहा था, इस सुनहरे आलोक में गोकरन भी सभी की दृष्टि में आ गया। जबसे पढ़ाई छोड़ी थी चिड़चिड़ा सा हो चला था, न किसी बोलता न बात करता ऐसा लगता मानो किसी और ही दुनिया में रहने लगा था, प्रतिदिन अपने भीतर के मेधावी छात्र को मारने की जुगत में लगा रहता लेकिन वो है कि पीछा ही न छोड़ता था, इसलिए स्वयं को सभी से काट लिया था उसने।

सबने गोकरन को देखा तो सारी कहानियों को विराम दे गोकरन को राम-राम कहकर सब तितर-बितर हो गये।

उधर पूरे गाँव में हलचल मची हुई थी, पुलिस के हवलदार गश्त लगाते फिर रहे थे और सरकारी गाड़ियों के हूटरों ने गाँव की शान्ति को ग्रहण सा लगा रखा था, कोई उनको देख खुश होता, कोई कोसता दिखता, *'जानें का काएं काएं करत फिरत हैं, प्रान लै लए ई हल्ला नें'* और बच्चे तो गाड़ियों के पीछे दौड़े-दौड़े फिरते थे, किन्तु दो चीजों में सबको समान रुचि थी हेलीकॉप्टर देखने मिलेगा और बड़े नेता के दर्शन होंगे बस इसी प्रसन्नता में क्या बुजुर्ग, क्या बच्चे और क्या युवा, महिलायें तक अपना-अपना काम जल्दी समेटने में लगीं थीं।

बुजुर्ग अपने संस्मरणों से सभी को बताते हुए गौरवान्वित होते थे कि देखो उन्होंने किन-किन नेताओं को देखा है -

'पहले इन्दिरा आऊत तीं तो दो दिना पहल सें
डेरा जमा लए करत ते मैदान में।'
'अरे का भीड़ होत ती दादा,
क्या बोलत ती
अच्छन-अच्छन की बोलती बंद हो जाए।
अब के नेतन में बा बात कहाँ।'

युवा बुजुर्गों की बातों को बड़े ध्यान से सुनते जाते और हंसते जाते *'अरे दादा अब गए इन्दिरा के जमाने'* और सिक्का उछालते हुए कहा कि *'अब तो माया को जमानों है माया को।'*

तभी चौपाल पर पिछली गली से प्रवेश करते हल्केराम ने कहा-

'बेटा माया बड़ी चंचल होत
सो समझबूझ खें अजमाइश करियो
पता चलो न माया मिले न राम!'

एक जोरदार ठहाका पूरे वातावरण को आन्दोलित कर गया। हल्केराम ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए फिर कहा -

सब अब येई पीढ़ी के हाथन में हैं, हम औरन की तो गई भोत रई थोरी हंसत खेलत कट रही और उम्मीद है कट जै है, काए दादा?

प्रश्नवाचक नेत्रों से हल्केराम ने गाँव के बुजुर्गों से पूछा और हाथ जोड़ प्रणाम कर बैठ गये।

'सही कहत हो हल्के, आजकल के लरकन को तो
कछु समझ नईं आऊत का करो चाहत का नईं।'

तभी पीछे से भिन्ने चिल्लाता दौड़ा आता था,

आऊत हैं, नेता घण्टाक में पहुँचें बाले हैं, चलो ल्यो।

पूरे गाँव में हड़बड़ी मच गई महिलायें जल्दी-जल्दी लाली लिपिस्टिक करके तेज कदमों से घूंघट से एक आँख को झांकने की इजाजत देती हुई चलती जाती और सबको आवाज देती जातीं, *'चलो जीजी जल्दी।'* पुरुष सब कामों को छोड़ तेजी से चुनाव पे चर्चा करते बाहर गाँव की तरफ दौड़ पड़े।

मैदान के बाहर बड़ी संख्या में पुलिस तैनात थी, रस्सियों के चारों ओर बस खाकी ही खाकी दिखाई पड़ती थी। सुबीते प्रधान मंच पर इधर से उधर भागते से दिख रहे थे। लोग घेरे के भीतर जाने का प्रयास करते तो हवलदार डण्डा फटकार देता और मुँह से गालियों की बरसात करता पीछे भगा देता। कोई धोखे से भीतर घुसने में सफल हो जाता तो कुर्सी पर बैठकर स्वयं को किसी रियासत के राजा से कम न समझता था। पेड़ों पर चढ़े बालक और युवा, सभा की शोभा और अधिक बढ़ाते से प्रतीत होते थे, सो पुलिस भी उन पर कोई ध्यान नहीं दे रही थी।

शहर से आए लोगों से कुर्सियाँ भर गईं थीं, आसपास के कई गाँव के लोग भीड़ लगा के खड़े थे। चिलचिलाती धूप में नेता जी का इंतजार हो रहा था, उनके आने की तय समयसीमा दो बार पार हो चुकी थी अब तक हेलीकॉप्टर की आवाज तक न आई थी, लेकिन प्यास से हलकान पसीने से तरबतर लोग अपनी जगह से डिगने को तैयार न थे, अपने कपालों पर गमछा धरे बार-बार आसमान की तरफ निहार लेते और पसीना पोछते जाते।

इस समय आपस में लोग तरह-तरह की कल्पनाएं, चर्चाएं करते और देश के भविष्य पर चिन्ता व्यक्त करते दिखाई पड़ रहे थे। हल्केराम ने अपने माथे से पसीना पोंछते हुए ठहाका लगाया –

अरे भइया! हम औरन खां तो
येई घमौरी और पसीना है,
बाकी सबरे सुख तो इनईं औरन खें आएं।
कुर्सीयन पे तो बड़े आदमी बैठत।

सही कहत हो महाराज! फुसफुसाते हुए मतईयाँ ने कहा –
सुनत हैं इन्हे पैसा दैखें बुलवाओ है।

सुनने वालों की आँखें फटी की फटी रह गई सभी मतईयाँ के और पास आ गये, ऐसा लगता था मानो आज मतईयाँ देश की सभी गुप्त फाइलें उनके लिए खोल ही देगा।

तभी हेलीकॉप्टर के गुर्राने की आवाज ने सबकी आँखों को आकाश की तरफ मोड़ दिया, रास्तों पर चलती चौपहिया ही उनके लिए आकर्षण का विषय हुआ करती थीं, फिर तो ये आकाश में उड़ने वाली ऐसा गरुड़ था जो इंसानों को बैठाकर उड़ा करता है।

बच्चों से लेकर बड़ों में उत्साह तो था ही साथ ही गर्वानुभूति अपनी सीमाओं के बंधन तोड़ती थी क्योंकि पहली बार उनके गाँव की धरती पर हेलीकॉप्टर उतर रहा था।

जनता के जयघोष के साथ ही नेता जी मंच पर पहुँच गये। नेता जी को फूल मालायें पहनाई गई, स्वागत भाषण हुए, सुबीते सिंह के मुखमण्डल पर घमण्ड और भय दोनों एक साथ विराजमान् थे।

अन्ततः नेता जी के भाषण की बारी आ गई, तालियों की गड़गड़ाहट के बीच नेता जी ने पन्नों को समेटा और मंच पर पहुँचकर बोलना आरम्भ किया –

मेरे प्यारे भाइयो और बहनों,
मैं आपका सेवक! आज आपके बीच आया हूँ ...
आपकी सेवा का मौका मांगने,

आपके राज्य में बैठी सरकार...
उच्च वर्गों के लिए काम करती है,
लेकिन हम आपके हितों के बारे में सोचते हैं...
सदियों से हमारे दलित वर्ग, निम्न वर्ग पर
ये लोग अत्याचार करते आए हैं,
लेकिन अब ये अत्याचार और बर्दाश्त नहीं किया जाएगा।
हम आपकी लड़ाई लड़ेंगे, दलितों, गरीबों के लिए
सरकारी नौकरी में आरक्षण बढ़ाएंगे।
निम्न वर्ग के गरीबों के लिए पक्के आवास,
बिजली पानी और गाँव में सरकारी स्कूल खोलेगें,
सालों से पड़ रहे सूखे पर आपकी मौजूदा सरकार ने
कोई संज्ञान नहीं लिया,
लेकिन हम सूखा प्रभावित क्षेत्रों के लिए
अलग से प्रकोष्ठ बनाएंगे।
आपकी उन्नति के मार्ग खोलेंगे।
पूरे राज्य में अराजकता की स्थिति है।
भ्रष्टाचार में गले तक डूबी ये सरकार
गरीबों के लिए नहीं बड़े लोगों के लिए काम करती है।
हम आपकी आवाज बनेंगे।

मंच पर लगे फर्राटा पंखों की तेजी ने मंत्री जी के भाषण के पन्ने हवा में उड़ा दिये, मंच पर अफरा तफरी के बीच पन्ने समेटे गये, इतने में सभा से उठे एक जोर के ठहाके ने नेता जी के मुखमण्डल की आभा को पसीने ने भिगो दिया, हाथ में पन्ने आए तो मुँह को भकभके रूमाल से पोंछ, चश्मा चढ़ाया और फिर बोलना शुरू किया ।

हाँ तो भाइयो बहनो!
आपके गाँव में पिछले वर्ष
तीन दलितों ने आत्महत्या की,

(सामने बैठी भीड़ में खुसर फुसर होने लगी, पीछे से सुबीते सिंह ने कहा साहब दो दलित थे एक बाम्हन)

हाँ! हाँ! कुछ सम्हलते हुए अपने शब्दों को बदलते हुए नेता जी बोले–

मेरा मतलब है... दो... दलितों ने आत्महत्या की थी,
क्यों की बताइये हमें? हम बताते हैं....
आपकी सरकार की गलत नीतियों की
और समाज में ऊँचे वर्गों की मनमानी की वजह से,
हमारी उन परिवारों के साथ गहरी संवेदना है।

(मतईयाँ जोर से ताली बजा उठा अपने बगल में लोगों से बोला वाह का बोलत हैं नेता जी, एकदम सही कहत हैं)

यदि राज्य में हमारी सरकार आई
तो हम ऐसे दलित परिवारों के सदस्यों में से
एक को सरकारी नौकरी और मुआवजा देंगे।
उनकी उन्नति में सहयोग करेंगे, आपके विकास के लिए
अपनी जान लगा देंगे,
लेकिन इसके लिए आपको हमें शक्ति देनी होगी,
हमारे हाथों को मजबूत करना होगा।
अब समय आ गया है कि सदियों से चले आ रहे
शोषण को जड़ से उखाड़ फेंकने का।
इसलिए अपना अमूल्य मत आपके अपने
सुबीते सिंह को दीजिए,
ये आपके सुख दुख के हमेशा से साझे रहे हैं,
अब इनके हाथों को और मजबूत बनाइये।
जय हिन्द! जय भारत! जय भीम!

सुबीते सिंह ने हाथ हवा में फहराकर माईक पकड़कर एक जोर का नारा लगाया –

'तिलक तराजू और तलवार,

कुर्सियों पर बैठे लोगों ने उसी आवेग में आवाज दी –

इनको मारो जूते चार'।

हल्केराम और बड्डे महाराज वहाँ विराजमान अपने ग्रामीण स्वजनों के मुखों पर अजीब सा भाव मुखरित होते देख भयभीत हो उठे।

हल्केराम बुदबुदाए –

'आखिर राजनीति ने इस सौहार्द भरे गाँव पर
अपनी चाल खेल ही दी।'

दोनों ने एक दूसरे का मुख देखा और वहाँ से उठकर चले गये।

क्षितिज को आन्दोलित करती तालियों की गड़गडाहट के साथ भाषण समाप्त हो गया, नेता जी धूल उड़ाते हेलीकॉप्टर में बैठ आसमान में अन्तर्धान हो गये, लेकिन पीछे छोड़ गए इस गाँव की मिट्टी पर कभी न भरने वाली दरार और जो बाकी बचा काम था वो सुबीते सिंह पूरा करते रहे।

जब तक चुनाव सम्पन्न न हुए तब तक नेताओं के भाषणों ने ग्रामीणों के कोरे मन पर ऐसा दलदल खींच दिया जिसमें पूरे गाँव की हंसी ठिठोली, खुशी धीरे-धीरे धंसते चले गये। कभी कोई किसी जाति की बात करता, कभी कोई किसी जाति की। जिस गाँव में जातियों के होते हुए भी लोग एक दूसरे के लिए खड़े होते थे, वो लोग अब एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखने लगे।

एक कुटुम्ब के समान रहता आ रहा गाँव, अब छोटे-छोटे समाजों में बंट गया, किसी का कोरी समाज, किसी का वैश्य समाज, किसी का ब्राह्मण समाज, मतदान के लिए सब अपनी-अपनी जाति का नेता चुनने लगे। आखिरकार राजनीति ने अपने शिकंजे में ले ही लिया, इतिहास से वर्तमान को पीड़ित करने का षडयंत्र रंग लाया। चुनाव समाप्त हो गया, नारे भी विदा हो गये, लेकिन **तिलक तराजू और तलवार वाले नारे** ने इस गाँव में अब अपना स्थाई स्थान बना लिया था, सामान्यतः लोगों के मुख से ये नारा टपकने लगा था। सुबीते सिंह भारी मतों से विजयी रहा।

हल्केराम चौपाल पर अकेले बैठे रहते, अब उनके साथ न तो कोई लोकधुन गाने वाले बैठते और न प्रश्नोत्तर करने वाले। कल तक

पूरे गाँव की साझी रामचरितमानस भी अब हरेक की न्यारी हो गई थी, नितान्त एकल, अब न चौपाइयों में रागिनियाँ होतीं और न दोहों में भाव। सावन में आल्हा गायन की बाट जोहते चबूतरे अपनी अशब्द पीड़ा को समेट के सो जाया करते। वो शब्द चंचलता, वो तर्कों की विरलता कहीं विलुप्त हो गये थे। चौपाल का बरगद अब ठिठोलियों पर झूमता न दिखाई पड़ता था, बस उदास बेजान सा खड़ा रहता। ढोलकें, इकतारे मंजीरे धूल की मोटी रजाई ओढ़े कोने में दुबके रहते। चौपाल पर कभी लोग जमा भी होते तो चर्चा में या तो व्यंग्य बाण होते या फिर ईर्ष्या की अग्नि। अब विद्वेष का सावन आता था, चीत्कार करता चैत्र।

इस चुनाव ने सारा परिदृश्य ही बदल डाला था, परिवार की तरह रहने वाला गाँव अब बात-बात पर झगड़ पड़ता। कोई किसी को उसके उच्च वर्ग की गाली देता, कोई निम्न वर्ग की। गालियाँ पहले भी दी जाती थीं लेकिन उन गालियों में प्रेम का रस इस प्रकार मिश्रित होता था कि उन अपशब्दों से भी अमृत टपका करता था। अब गालियाँ तो छोड़िये सामान्य वार्तालाप भी जहर बुझे तीरों सा प्रतीत होने लगा था। नेता तो पंख लगाकर उड़ गये थे लेकिन पीछे हृदयों पर ऐसा गुबार डाल गये थे; जो चाहकर भी न मिटने पाता। अब हर कोई अकेला था, स्व में स्व के लिए जीता।

अन्ततः राजनीति ने गाँव में अपनी जीत का ध्वज लहरा ही दिया साथ ही कभी न समाप्त होने के लिए बोये गये जहर के बीज में अंकुर फूट चुका था।

॥9॥

गोकरन भोर से ही खेत पर निकल जाता, दिन भर वहीं कुएं के पास बैठा रहता, कभी रेडियो सुनता, कभी फावड़ा ले के खेत में जुट जाता, फावड़े की गति ऐसी होती जैसे अपना करम काटने का प्रयास कर रहा हो, दिन रात उसके कानों में बाबू की हंसी गूंजती और आँखों में मुरझाता चेहरा!

घर जाने की हिम्मत न कर पाता था। बारहवीं पास था और पिता को कष्ट न हो इसलिए कई नौकरियों के फॉर्म भी भरता लेकिन अच्छे नंबरों के बावजूद कुछ हाथ में न आ रहा था, तीन साल बीत गये कुछ न हुआ।

आज सबेरे के अखबार में पीडब्ल्यूडी का रिजल्ट आने वाला था, गोकरन अनमना सा बस स्टैण्ड पर अखबार की प्रतीक्षा कर रहा था, नंबर तो बहुत अच्छे आए थे, बस अन्तिम नियुक्ति का परिणाम आना बाकी था। अखबार लेकर गोकरन खेत की ओर निकल गया, देवी के विग्रह के समक्ष अखबार का पन्ना खोला तो एक बार फिर वही हुआ जो हमेशा से होता आया था।

दोपहर हो चली थी, गोकरन घर की ओर निकल गया तभी सामने से छुट्टन खुशी में उछलता भागता चला जा रहा था।

गोकरन – *का रे छुट्टन! कहाँ भगो फिरत?*

छुट्टन – *अरे गोकरन! हमें नौकरी मिल गई।*

गोकरन – *बहुत बढ़िया! कहाँ मिली? तोरे नंबर तो बहुतई कम आए ते?'*

छुट्टन – *'बो हमें औरन खें कोटा मिलत न, पीडब्लूडी में एल.डी.सी हो गये हैं, अब हम।'*

गोकरन – *'अच्छी बात है छुट्टन बढ़िया से काम करना, वैसे कितने पर्सेंट आए तुम्हारे?*

छुट्टन – चालीस, अच्छा जो तो बताओ तुमने भी तो भरो हतो, येई फारम का भओ?'

गोकरन का कलेजा सूख के रह गया, इसी परीक्षा में गोकरन ने साठ प्रतिशत नंबर पाए थे लेकिन फिर भी असफलता ही मिली। मित्रता के मध्य स्कूल के जमाने में पड़ी रेख अब और गहरी हो गई, न चाहते हुए भी गोकरन, छुट्टन से घृणा करने लगा था, कई बार ये भाव प्रकट भी हो जाते, लेकिन प्रायः पिता के कारण गोकरन शान्त ही रहा करता था। आज छुट्टन की इस प्रसन्नता ने उसे और विदीर्ण कर दिया, कभी अपने कांधे पर लहराते जनेऊ को देखता कभी छुट्टन को, उसके प्रश्न का मूक उत्तर देता हुआ गोकरन आगे बढ़ गया।

गोकरन के मन में मानवता और करुणा के भाव सभी विदाई से ले रहे थे। आज फिर पिता के धर्म की शिक्षा सामाजिक परिदृश्य में धुंधली पड़ती दिखाई पड़ रही थी। स्वयं से कभी प्रश्न करता कभी इतिहास पर हंसने लगता,

क्या फर्क है? इतिहास के कल में
और आज के इस कथित समानता, न्याय
और लोकतांत्रिक युग में? तब भी रंगभूमि में योग्यता...
अपने अधिकार के लिए चीखती रही
लेकिन हटकार दी गई
और आज भी हारी खड़ी रह जाती है ।
बस फर्क इतना है.... तब सूतपुत्र का लांछन लगा था
और आज ब्राह्मणपुत्र का,
तब भी दुत्कार ने घृणा का आलेख लिखकर
विध्वंस की पटकथा रच डाली थी,
आज भी वैमनस्यता द्वेष जन्म ले रहे हैं,
न जाने ये किस परिणाम की ओर अग्रसर होंगे।
वाह रे तन्त्र! बदलाव... ! बदलाव का आडम्बर रचकर
उसी धरती पर विराजमान रहते हुए
ऐसा छद्मी आडम्बर फैला देते हो कि

पूरा समाज प्रसन्न होकर मूर्ख बनता रहता है।
काल की एक और पोथी लिख रही है,
बस किरदार बदले हैं, भाव तो वही हैं
और हम निरे मूर्ख जो इसे उन्नति के प्रमाण मान बैठे हैं।

अपने पर काबू कर गोकरन घर पहुँचा तो मतईयाँ अपने बेटे की सफलता की खबर सुनाने हल्केराम के पास बैठा था। हल्केराम बेटे के चेहरे के भाव पढ़ ही रहे थे कि मतईयाँ ने प्रश्न दाग दिया–

'का करत रहत गोकरन.... आजकल,
अभे लौ कहूं ठिकानो नईं परो का?'

इस व्यंग्य बाण ने गोकरन के भीतर सुलगी आँच को और प्रचंड कर दिया –

'हओ कक्का कछु नईं करत, न करने आए,
तुम्हें तकलीफ लै बे की जरूरत नईयां।'

अवसाद और कुण्ठा ने गोकरन के भीतर एक चिड़चिडाहट पैदा कर दी थी। वो चाहे जब जिससे झगड़ बैठता, चाहे जब बहस करने लगता।

हल्केराम ने गोकरन को आँखें दिखाई और कहा –
'काए रे ऐसें बोलो जात बड़न सें।'

पाँव पटकता गोकरन भीतर जाकर खटिया पर बेजान सा गिर पड़ा, अम्मा ने बेटे के माथे पर हाथ फेरा तो पीड़ा का सागर आँखों से फूट पड़ा। माँ बेटे घण्टे भर आंसू बहाते रहे।

हल्केराम बाहर से ही बेटे की दशा देखकर खेत की तरफ मुड़ गये, मन्दिर पहुँचकर आज फिर देवी की आँखों में उत्तर और समाधान दोनों खोजने का प्रयास करते रहे लेकिन आज देवी की पथरीली आँखों से भी कोई उत्तर न मिलता था और न ही कोई रास्ता।

सूर्य ढलने को था, मन्दिर की दिया बाती करके हल्केराम घर के लिए निकल पड़े, बेटे की तकलीफ का घुन उन्हें भीतर ही भीतर

चुने जाता था। आए दिन बीमार हो जाते कहीं ज्वर, कहीं खांसी कुछ न कुछ रोग शरीर को लगा ही रहने लगा।

दिन महीने, तेजी से बीत रहे थे, स्थिति दिन प्रतिदिन खराब होती जाती थी। गोकरन को अब समझ न आता था कि करे तो क्या करे। खेती में लगा तो रहता लेकिन तीन बीघा देगा भी तो कितना, चूल्हा जल जाता है, यही बहुत है, उस पर पिता की दिन-ब-दिन बढ़ती बीमारी।

किंकर्त्तव्यविमूढ़ गोकरन ने आज वो निर्णय लिया जिसके लिए माता पिता कभी तैयार न होंगे लेकिन फिर भी हिम्मत करके पिता के समक्ष प्रस्ताव रखा -

बाबू! ई जमीन सें कछु तो हो नईं रहो,
ई खैं बेंच खें कछु धंधा काए न शुरू कर दें।

सुदामा और हल्केराम एक दूसरे का मुँह देखते रह गये, उन्होंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उनका बेटा ऐसी बात कभी उनसे कहेगा। बचपन से जिस बेटे को अपनी जड़ों की महत्ता बताते आए थे, वो इतनी सी परेशानियों को देखकर, अपनी जड़ों को काटने की बात इतनी सहजता से कह देगा।

हल्केराम के नयन सजल हो उठे, सुदामा भी अवाक् बेटे का मुख देखती रही, गोकरन ने अपना प्रश्न फिर दोहराया

'अच्छो ग्राहक मिल जै है
बाबू तो तीन बीघा के एक लाख तक मिल जै हैं।'

कदाचित् युवा बेटे से पिता अपनी बात उतनी स्वछन्दता से नहीं कह पाते जितनी स्वछन्दता से माँ कह लिया करती है और हल्केराम तो अपने पुत्र की व्यथा का अपराधी भी स्वयं को समझते थे इसलिए अधिक कुछ न कहते थे।

हल्केराम और सुदामा ने आँखों से ही सम्वाद किया।

गोकरन से सुदामा ने दृढ़ता से कहा-

बेटा! ऐसो तो हो नईं सकत,
हमाए जीते जी तो हम अपनी जरें नईं काट सकत।
जब हम मर जाएं तो चाएं जो कछु करियो,
अपनी जरन सें कट खें कौनऊ पेड़ लौ नई हरयात
हम तो इंसान आएं। जा जमीन तो हमाए पुरखन की आए
तुमाई सात पैरियन की जरें गड़ीं इमें
और खेत रै है तो
कछु न हो है तो खाएं भरे खैं होई जै है,
आज तुम अकेले हो कल लरका बच्चा हो हैं,
तो उनखें अच्छो पहरें खें मिले न मिले
कम सें कम दो ज्वार सूखी सही
लेकिन रोटी तो मिल जै है।

हल्केराम निम्नमुखी हो माँ बेटे का सम्वाद सुन रहे थे। गोकरन कुछ झुंझलाया सा बोला –

हओ तो येई जरन खें सहेजें बैठे रहो और कछु नईं।
अम्मा! हम कौन जो कहत कि
एक लाख को जुआ खेलने
कौनऊ धंधा पानी में लगा हैं, तो
चार पैसा पास पल्ले हो है सो
फिर नई जमीन खरीद लै हैं।'

हल्केराम आखिर बिफर ही पड़े –

किसने कहा तुमसे कि व्यापार करने से
पैसा हाथ में आएगा, यदि व्यापार में कुछ न मिला तो,
तब न जमीन पास में रहेगी और न व्यापार,
तब किसके यहाँ भीख मांगोगे।
बेटा! जीवन में हमने कभी किसी के आगे
धन के लिए हाथ नहीं पसारे,
मुझसे जितना हुआ, उतना लोगों की सहायता ही की।

मैंने अपना स्वाभिमान कभी गिरवी नहीं रखा।
पूछो अपनी अम्मा से सालों पैबंदी धोती पहरीं,
कभी एक गहना नहीं मांगा लेकिन कभी इसके मुँह से
जमीन बेचने का शब्द भी नहीं निकला,
यहाँ तक कि मैंने कभी सोच ही लिया तो
इसने मुझे कहा धन किसी का सगा नहीं होता।
तुम्हारी अम्मा ने तुम्हारी आगे की पढ़ाई के लिए भी
खेत नहीं बेचने दिए वो सिर्फ इसीलिए कि
आज के समाज में हम सवर्णों के लिए
कोई राह सहज ही नहीं असम्भव सी है,
तुम तो इस बात को अच्छे से समझते हो
भोग चुके हो फिर भी ऐसी बात करते हो,
आज चारों ओर हमारे लिए नफरत ही दिखाई पड़ती है,
इस युग में वही सवर्ण कठिनाई से जी पा रहे हैं,
जिनके पास कुछ धन है, फिर हम तो गरीब हैं,
हम तुम्हारे प्रति अपने दायित्व नहीं निभा पाए,
उसके लिए हमारी आत्मा, हमें आज भी कचोटती है,
लेकिन....

पिता की बात बीच में ही काटते हुए गोकरन खटिया के पाट पर हाथ रगड़ते हुए बोल पड़ा –

बाबू आज की दुनिया में धन सें ज्यादा कछु नईयां,
क्या हमने नई देखा,
आपको धन के लिए हारते, टूटते हुए।

हल्केराम गोकरन को बीच में ही टोककर बोले –

हाँ धन की आवश्यकता में हमने कई काम ऐसे किये,
जो तुम्हारी समझ से नहीं करने चाहिए
लेकिन हमें उसके लिए कोई ग्लानि नहीं।
आज भी हमारे लिए मानवता की रक्षा से अधिक

कुछ नहीं, इसके लिए हम अपने हजार जन्म के सुखों की
बलि चढ़ाने को तैयार हैं।
बेटा! ब्राह्मण तो कहलाता ही भिक्षुक और बटुक है,
उसे धन का मोह करना शोभा नहीं देता,
हमारे लिए धन का लोभ पाप से अधिक कुछ नहीं होता।
जितना है उसमें संतोष करना सीखो।

गोकरन – *बाबू! पाप और पुण्य हम सब जानते हैं,*
आप से ही सीखा है
लेकिन अब समय नहीं है पाप और पुण्य का,
आपने तो किये हैं इतने पुण्य,
गाँव वालों के लिए अपना घर भी नहीं देखा
आपने लेकिन क्या मिला आपको,
वो मतईयाँ कक्का आपके दरवाजे पर
आपकी सन्तान के नाम से आप के ऊपर व्यंग्य बाण
चलाने में एक बार भी नहीं हिचके।
आज कोई आपके पास बैठने को तक नहीं आता क्यों?
क्या आपने उनके प्रति कोई अत्याचार किया है या
फिर कोई पाप?
और रही भिक्षुक बटुक की बात...
तो कहो तो झोला टांगें द्वारे-द्वारे हाथ पसारें फिरन लगें
लेकिन आप जो भी समझ लो कि
कोऊ हम औरन खैं भीख सुन्दा न दे है,
अब इस समाज में सौहार्द नहीं घृणा पलती है।

हल्केराम की वाणी में पीड़ा उतर आई थी –

हाँ बेटा! सही कहते हो शायद किये होंगे कुछ पाप।

सुदामा ने पति के सजल नयनों को देखा तो अपने मान को डूबता सा पाया और पति का सम्मान नारी का मान होता है, गर्व होता है।

अत: यदि कभी उसके मान के नेत्रों में गंगा उतर आए तो नारी के समक्ष कोई अतिप्रिय भी विरोधी सम हो जाया करता है। सुदामा के नारीत्व ने मातृत्व को पीछे धकेल गुस्साते हुए कहा –

'हाँ लल्ला अब इत्ते बड़े हो गये कि
हमें पाप और पुण्य सीखा हो,
अब एक शब्द और हम नई सुनो चाहत,
एक बार हमने कह दई कि
जमीन न बिक है तो न बिक है
और जाओ तुम्हें जो करने सो कर लो,
बाप सैं जबान लड़ाबे की जरूरत नईयां।'

गोकरन पांव पटकता हुआ अपने आप को कोसते हुए बाहर निकल गया।

आज हल्केराम की बची खुची शक्ति भी जवाब दे गई। उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि जिस सन्तान को इतने सहेज के पोषित किया, अच्छे बुरे का फर्क समझाया वो सन्तान आज अपने ही पिता की सीख पर इतनी सहजता से प्रश्नचिन्ह लगाकर चली जाएगी।

क्या उसने अपनी सन्तान की जीवन धरती को इतना पोला छोड़ दिया था कि पीड़ाओं के चन्द झोंके उनके रोपित संस्कार के वृक्षों को गिरा देंगें।

सुदामा और हल्केराम की आँखों से सावन बरसता रहा लेकिन यथार्थ की आँच ने उनको कुछ इस तरह झुलसा दिया था कि हृदय की पथरीली धरती पर अब इन बरसातों का भी असर न हुआ करता था।

उधर गोकरन ने अपने माता–पिता से पहली बार इस तरह बात की थी, मस्तिष्क की आंधी शांत होने के बाद गोकरन को अपनी भूल दिखाई पड़ने लगी, पेड़ के नीचे बैठा रोता रहा, अपने हाथों को पेड़ पर पटकता रहा, लेकिन बन्दूक से निकली गोली और जुबान से निकली बोली कभी लौट के नहीं आती।

गोकरन बार–बार स्वयं से प्रश्न करता कि यही बात सहजता से

कही जा सकती थी, समझाई जा सकती थी लेकिन उत्तेजित होने की क्या आवश्यकता थी, अब जाकर वो अम्मा बाबू से क्षमा मांग लेगा कहेगा, उसे ऐसा नहीं करना चाहिए।

लेकिन भीतर बैठे अधिमानव ने साफ इंकार कर दिया, उसमें उसकी क्या गलती, उसने तो सहजता से ही कहा था उन्होंने ही उसे गलत दिशा में मोड़ दिया। क्षमा माँगने की अभिलाषा को उस अधिमानव ने अपने तर्कों से परास्त कर दिया।

॥10॥

हल्केराम बेटे के दिन प्रतिदिन बदलते व्यवहार से विचलित रहने लगे। क्या करे कुछ समझ न आता था। आज बड्डे दादा के यहाँ हो आता हूँ, शायद उन्हें कोई मार्ग समझ आ जाए, हल्केराम ने सुदामा से कहा।

सुदामा ने निर्लिप्त होकर बोली – *जाने हैं तो भले चले जाओ*
लेकिन उन्हें मारग पता होतो तो
अपने लरका खें न सुधार लेते।

इस व्यंग्यबाण ने हल्केराम को कुछ विचलित तो किया लेकिन फिर भी अपनी कमरी उठाकर बड्डे महाराज के घर की तरफ निकल गये।

इस बरस ठण्ड भी कंजूसी से आयी थी माघ में भी हल्की शीतलता ही बची थी, इन दिनों सूर्य भी सिंहस्थ होने को थे, सो उनकी गर्जना सिंह सी दिनोंदिन बढ़ती जाती थी।

बेटे की चिन्ता ने हल्केराम का शरीर तोड़ कर रख दिया था इसीलिए जाड़ा उन्हें कुछ जल्दी पकड़ लिया करता। हल्केराम अपने डगमगाते कदमों से बड्डे महाराज के घर पहुँच गए।

एक कमरा पक्का और एक कच्चा घर के बाहर नीम का बड़ा सा वृक्ष, उसी के तले खटिया पर पोथी पत्रा खोले, चश्मा चढ़ाए बड्डे महाराज मतईयाँ के बेटे छुट्टन के विवाह की सुगरी निकाल रहे थे।
राम...राम... हल्के महाराज!

मतईयाँ ने हंसते हुए कहा– *छुट्टन को ब्याओ ठान दओ है आसों।*

हल्केराम ने दादा के चरण स्पर्श करते हुए कहा –
बहुत बढ़िया करो, कबको सुदो?

मतईयाँ ने उत्साहित होते हुए उत्तर दिया–

ओई तो सोधत आएं बड्डे महाराज।

हल्केराम भावशून्य से चबूतरे पर बैठ गये, पूर्व में जब हल्केराम बैठते तो कितनी भी परेशानियाँ हों उनकी मुखमण्डल की आभा मलिन न होने पाती थी, एक पीताम्बरी मुस्कराहट सदैव उनके मुखमण्डल की शोभा हुआ करती थी, लेकिन सन्तान की व्याधियाँ, पीड़ाएं अच्छे-अच्छे सूरमाओं को भी खोखला कर दिया करती हैं।

उस पर मतईयाँ ने मन्द मुस्कान के साथ अन्तर्भेदी व्यंग्य बाण छोड़ दिया –

काए महाराज गोकरन कहूँ न लग पाओ अभे लौ,
अब तो छब्बीस बरस कौ हो गओ?'

हल्केराम ने उसकी व्यंग्य भरे प्रश्नों का उत्तर देना उचित न समझा और हाथों को आपस में रगड़ते हुए धरती पर पड़ी निंबोरियों को पांव से रगड़ने लगे।

बड्डे महाराज ने स्थिति का भान करते हुए मतईयाँ से कहा–

फागुन की चतुर्थी तिथि को
लड़के के विवाह की तिथि निश्चित कर दी है,
कल आके सब सुगरी स्यात ले जाना, लिख के रखेंगे।

मतईयाँ दोनों को प्रणाम कर बाहर निकल गया।

हाँ, हल्के! कहो सब ठीक तो है? दादा ने पूछा।

हल्केराम – *हओ दादा! सब ठीक तो है*
लेकिन गोकरन को का करौं समझ नई आ रहो,
अब तो जमीन बेंचें खैं फिरन लगो और कल तो......
का चलत रहत ओखे भीतर कछु समझ नई पा रहे।
हम तो दोऊ जने समझा समझा हार गये।
दिन भर खेत पे डरो रहत।
अब तुमई देखो बात करकें शायद समझ जाए।

अपनी दाढ़ी खुजाते हुए बड्डे महाराज कुछ देर सोच विचार में करने के बाद बोले–

देखो भाई! हम बात तो कर लै हैं
लेकिन आजकल के लड़का किसी की नई सुनत
और जब मनुष्य स्वयं से ही विद्वेष पाल ले
तो कोई उसके लिए महत्त्वपूर्ण नहीं होता,
फिरऊं एक सलाह हम तुम्हें दें तो मान हो?

हल्केराम ने आशान्वित होकर कहा –
कहो दादा! काए न मान हैं....

बड्डे महाराज –
देखो हल्के! अब गोकरन का विवाह कर दो,
संभवत: जो खीझ व्यक्ति अपने ऊपर निकालता है,
अपने साथी के साथ बात करने से
हल हो जाया करती है।
ये मानो या न मानो एक उम्र के बाद सन्तान
अपने मन की बात माता-पिता से कहने में
संकोच करती है और जहाँ संवादहीनता हुई
वहीं समस्याओं का जन्म होने लगता है,
इस संवादहीनता को समाप्त करने का
सबसे उत्तम मार्ग है कि उसका विवाह कर दिया जाए
हल अपने आप निकल आएगा।

हल्केराम – *जो सब तो ठीक है दादा!*
लेकिन हमाए घर की स्थिति तो
आपसें लुकी छिपी नईयां, घर में बस येई समझ लो
सूखी रोटी मिल जात, नईं तो अना धना तीन चना नईयां,
ऐसे में कौन भलमानस अपनी बिटिया
हमाए इते ब्याह दे है और गोकरन ऐसो कछु करत नईयां
वोई खेती चाहे जौन समझ लो।

दादा अपने हाथों की मुट्ठियों को रगड़ते हुए बोले–
जो तो सब जानत गोकरन बहुत अच्छो लरका है,
संस्कारी है, माँ बाप की कभऊं अवज्ञा न कर है
और रही बात कल की तो
कभऊं कभऊं जवान खून आए उबल परत,
अगर तुम ब्याओ खें तैयार हो तो
एक बिटिया है हमाई नजर में,
मताई बाप नईयां गरीब घर की है,
बुआ ने पालो पोसो, पढ़ी लिखी तो नईयां
पै घर को काम सब कर लेत,
दिखत सुनत की अच्छी है, बोलचाल बढ़िया है
और समझदार है।
अगर कहो तो बात करें हम?

हल्केराम कुछ सोचते रहे फिर बोले कि
दादा आप बात चलाओ,
काए ब्याओ तो करने है ही लरका को।

हल्केराम दादा के पांव छू के निकल गये।

गाँव की एक पीढ़ी युवा हो चुकी थी। कुछ कोटे से सरकारी नौकरी में चले गए कुछ लड़के जुओं की फड़ों पर चौबीसों घण्टे विराजमान रहते। इनको देखकर हल्केराम के जी को ठंडक पड़ जाती कि कम से कम यहाँ उनके संस्कार छोटे नहीं पड़े, बेटा इन संगतों में तो नहीं पड़ा।

घर पहुँचकर सुदामा से हल्केराम ने कहा –
गोकरन से बात कर लेना,
उसके विवाह के बारे में सोच रहे हैं।

सुदामा के मुखमण्डल की कान्ति दुगनी हो गई, एक सांस में हजार सवाल कर डाले –
कौन की बिटिया है, कैसी है, कहाँ की है?

हल्केराम – *पहले पूछ तो लो अपने लरका सें*
तब कछु आगे बढ़ें पता चलो
हम तयतवा कर दें और लरका रिसानो बैठो।

सुदामा मुँह बिचकाते हुए बोली –
एक बार तना जोर का पकर गओ
तुमाए लानें तो राक्षस हो गओ,
लरका आए हो जात कभऊं कभऊं।
अब मताई बाप से न लड़ है तो किसैं लड़ है।

हल्केराम – *हओ हओ ! ठीक है,*
अब तुम हमें कहानी न बताओ
पूछ लो और हमें बताओ सो हम आगे बढ़ें।

शाम को सुदामा ने बड़े प्यार से बेटे के माथे पर हाथ फेरा और कहा –

बेटा बाबू ने एक बिटिया देखी है,
कहो तो आगे बात चलाएं।

गोकरन ने अनमने ढंग से कहा– *जो करने सो करो,*

इतना कहकर खाट पर निढाल सा पड़ गया। जी में तो आया अम्मा से कह दे अपनी जिम्मेदारी तो उठा नहीं पा रहा, आने वाली को का घास खिलाएगा लेकिन पुराने पाप की स्मृति ने उसकी हिम्मत को बोझिल कर दिया। गोकरन का ब्याह तय हो गया, फागुन की एकादशी के दिन की स्यात निकली।

घर में धन का अभाव भले था लेकिन सुदामा के चेहरे पर संतोष और प्रसन्नता की आभा सदैव कुबेर सी दमकती रहती थी, सुदामा चारों ओर फूली न समाती खूब बन्ना बन्नी के बुलऊवे लगवाए। घर में पूरा दिन गुनगुनाती हुई ब्याह के कामकाज निपटाती।

दूसरी तरफ गोकरन सभी आशा अभिलाषाओं से हीन बस पिता के कहे अनुसार चले जा रहा था। न उसके चेहरे पर दूल्हे सी कान्ति दिखती और न अंगों में स्फूर्ति।

विवाह का दिन भी आ गया बिना किसी अधिक शोर शराबे के दोनों पक्षों के पाँच-पाँच लोग मिल गये और एक साधारण से कार्यक्रम में सिन्धु और गोकरन का विवाह हो गया।

नववधू के स्वागत के लिए सुदामा ने अपने सामर्थ्य भर तैयारी की थी। उसने अब आंगन में एक और छपरा डाल लिया था, बहू के लिए अलग से जगह तो चाहिए।

हल्केराम से चुहल करती कहती -

घर दोर बहू को,
और सास की देहरिया,
अब महाराज......
खांसबो सीख ल्यो
बहू आ गई घर में,

और आँचल से मुँह दबाए खिलखिला के हंस पड़ती।

गोकरन स्वयं से सम्वाद करने से भी कतराता था फिर पत्नी से कैसे क्या सम्वाद करे क्या कहे? क्या बताए? अपनी असफलताओं की कहानियाँ, या फिर गरीबी के कारण, या इस फूस के महल की फटती दीवारों की सिलाईयाँ कहाँ कहाँ हैं?

गोकरन चाहकर भी समझ नहीं पा रहा था। अपनी स्थिति से समझौता कर पाने का प्रति क्षण नए प्रयास करता लेकिन नित नए तर्कों का आवरण ओढ़े उसका मस्तिष्क उसे मुँह चिढ़ा जाता।

उस पर गाँव वालों के व्यंग्य बाण, ये सामाजिक विद्रूपता उसकी आत्मा तक को कचोटे डालती थी।

॥11॥

माघ का पखवारा था। सिन्धु को वधू बन घर में आए, पूरा वर्ष होने चला था, पढ़ी लिखी न थी लेकिन अपने दायित्वों को कुशलता से पूर्ण करना जानती थी, घर परिवार उसने पूरी कुशलता से संभाल लिया था, लेकिन पति को संभालना उसके लिए अब भी असाध्य बना हुआ था। वो जब भी बात करने का प्रयास करती, गोकरन कोई विशेष टिप्पणी न करता, एक कान से सुनता दूसरे से निकाल देता।

गोकरन अपने भीतर के द्वन्द्वों से ही उबर न पा रहा था। वो भी सिन्धु की सहृदयता पर अपने प्रेम की वर्षा करना चाहता लेकिन न जाने क्यों उसका हृदय उसे धिक्कारता रहता, अपनी मेधा को मारते-मारते वो स्वयं को मृतप्राय सा समझने लगा था।

रात का अंधेरा बढ़ गया था लेकिन पूरणमासी का चंद्रमा अंधेरे को शीतल प्रकाश से आलोकित कर सौन्दर्य के प्रतिमान गढ़ रहा था, चाँदनी आकाश भर के तारों के साथ अठखेलियाँ करती खेलती फिरती थी। प्रकृति के ये सौन्दर्य सिन्धु को काल से अधिक कुछ नहीं लगते थे, आकाश की तारामण्डली उसे स्वयं की हंसी उड़ाती सी प्रतीत हो रही थी।

अब तक गोकरन घर नहीं पहुँचा था, सुदामा देहरी पर बैठी बाट जोह रही थी, सिन्धु बार-बार कहती

अम्मा भीतर भग याओ, रोटी खा ल्यो,
कब लौ दोरे पै बैठी रैहो, आ जै हैं बे।

लेकिन मातृ हृदय सन्तान की अनकही पीड़ाओं की उष्णता को महसूस कर लेता है, सुदामा भी अपनी सन्तान के अन्तर्मन की पीड़ा से अच्छी तरह वाकिफ थी,

'तुम खा लो सिन्धु
मैं तो गोकरन के आएं के बाद खै हों।

उधर भीतर हल्केराम अकुलाते अपने छपरे में इधर से उधर चक्कर काट रहे थे, विचारों का प्रवाह उन्हें ठहरने ही न देता था, अनहोनी की आशंकाओं से त्रस्त हल्केराम थर्रा के रह जाते थे। किसी ने अन्न को हाथ भी न लगाया था, दस बज चुके थे।

दूर से सुदामा को गोकरन की परछाई दिखाई पड़ी माँ का हृदय आश्वस्त हुआ, पिता के विचारों की आँधी को भी चैन मिल गया। गोकरन के आते ही सुदामा ने सहज सा प्रश्न किया –

कहाँ रहे भइया बड़ी देर कर दई, कबसें बहू बैठी है।

गोकरन ने सुलगते नेत्रों से माँ और सिन्धु को देखा, उसके हृदयाग्नि की तपिश सबने महसूस कर ली, एक शून्य सा छा गया, उस टिमटिमाती रोशनी में भी अंधेरा भर गया किन्तु स्त्री का प्रेम किसी भी अंधेरे को चीरने की ताकत रखता है, कुछ कठोर सत्य जो माता-पिता सन्तान को कहने से हिचकते हैं, जीवनसाथी उसे सहजता से कह दिया करते हैं ।

आज सिन्धु ने इस गहराते अंधेरे से युद्ध करने की ठान ही ली थी। गोकरन बिना कुछ खाए पीये खटिया पर पड़ गया।

सिन्धु ने धीरे से कहा– *आखिर बात का है?*

गोकरन ने उसकी ओर पलटकर देखा हृदय की पीड़ा आँखों में साफ झलकती थी –

कछु नई काए का बात है?

सिन्धु – *अच्छा! जब कछु बात नईयां*
तो जो कौन सो भेष धरें, फिरत रहत
और की खें दिखाऊत,
अपने मताई बाप खैं, की हमें?
कीने का बिगारो तुमाओ?

गोकरन ने कुछ झल्लाते हुए कहा –

मैं कोऊ सें कछु कहत हों का, कि तुम्हें मारत हों।

अपनी मचिया पति के पास सरकाते हुए सिन्धु बोली –

तौ फिर अपने मताई बाप खैं कौन जनम को दुख दै रए, उनसें जित्तो बनो उननें करो तुमाए लानें और आज लौ कर रए लेकिन तुम्हें उनकी तकलीफ नईं दिखात?

गोकरन खटिया पर उठकर बैठ गया, धरती में मुँह गड़ाए सिन्धु को सुन रहा था, सिन्धु ने उसके हाथों पर अपने सहानुभूति भरे हाथ धरे तो गोकरन के भीतर का लावा जैसे अश्रु बनकर बह निकला, थर्राथर्राते होठों से गोकरन ने कहा –

तुम्ही बताओ मैं क्या करुं, अपने भीतर के युद्ध से नहीं लड़ पा रहा, हर रोज हजार बार हारता हूँ, मरता हूँ, ऐसा लगता है ये शरीर नहीं लाश लिए फिरता हूँ, कभी-कभी तो लगता है ये देह छोड़ पवन में मिल जाऊं।

पति के दृगों से झरते अश्रुओं ने सिन्धु को भी सजल नयन कर दिया, हृदय अनहोनी के भय से काँप उठा, उसने पति का हाथ पकड़ा और अम्मा बाबू के छपरे के बाहर ले जाकर खड़ा कर दिया।

इनको मुँह देखो फिर अपने मुँह से ऐसे शब्द निकारो, सोच ल्यो इनको का हो है, येई दिना के लानें तुम्हें पेट काट-काट खें बड़ो करो तो,

अरे मताई बाप के लाने तो इतई बहुत होत की उनकी सन्तान हंसत खेलत उनके सामने है, तुम इत्तई नईं कर सकत तो, बे कौन तुमसें हीरा मोती मांगत।

आए दिन अम्मा बाबू तुम्हारे कारन रोटी नईं खात, रोउत रहत, सूख खें आधे भी न रहे। कभऊं देखो है आँख भरकें बाबू खें, जब चलत हैं तो पांव कपत, अम्मा तनक बखरी गुबरतीं तो हांफ जातीं।

तुम्हें जो करने सो करो पै जो तो देखो तुमाओ परिवार तुमाओ मुँह देख खें जीयत, दूसरो को धरो हम औरन के

लानें, बहुत बिलमा लओ गुस्सा, अब त्याग दो, इखें पाले सें कोऊ को कछु न बिगर है, जो बिगर है तुमाओ बिगर है, मताई बाप जीवन छोड़ दे हैं। जीवन में जो है, सो उखें आगे बढ़ाओ, अपनो फरज निभाओ।

अधखुले किवाड़ों से हवा में तैरती माता-पिता की सिसकियों ने गोकरन के हृदय को झकझोर कर रख दिया उसने अपने पिता को कभी इस प्रकार बिलखते नहीं देखा था, आज स्वयं पर लज्जित हो रहा था, गोकरन उल्टे पाँव अपने छपरे में लौट आया, अब तक उसे ज्ञान ही नहीं था कि वो क्या किये जा रहा है।

बिलखता गोकरन सिन्धु का मुख ताके जा रहा था, उसका एक-एक शब्द जैसे उसके भीतर की व्याधि पर औषधि सा असर कर रहा था।

आज रात गोकरन के हृदय के भीतर का युद्ध परास्त हो गया था, उसकी वामांगी के तीव्र शब्दबाणों ने उसे अपने कर्त्तव्यों का भान करा दिया था, रात भर अश्रुओं की बारिश होती रही, प्रगाढ़ आलिङ्गन में पति पत्नी के भीतर की प्रत्येक पीड़ा जैसे तर्पण जल प्राप्त कर शान्त हो रही थी। आखिर प्रेम ही तो मानव की निधि है।

किलोरें करतीं ऊषाओं की लालियां सर्वत्र बिखर गईं, एक पुत्र इस नई भोर का स्वागत माता के वात्सल्य से करना चाहता था, गोकरन अम्मा के गले में फिर वही स्नेह माालायें डाले वात्सल्य का अनुरोध कर रहा था, अम्मा के सजल नयन चमक उठे आज कितने वर्षों बाद सन्तान के मुख पर मुखरित हंसी देखी थी। अम्मा ने गोकरन माथे पर हाथ फेरा और सिन्धु की ओर ममता भरी दृष्टि से धन्यवाद ज्ञापित किया। ममता के रस में प्राणों का दूषित वेग अब पिघल चुका था। आज गोकरन फिर मुस्करा रहा था। माघ फलित हो गया था।

॥12॥

फागुनी एकादशी थी। लाल, पीले, श्वेत, चम्पई रंगों में रंगा वसंत बौराया फिरता था, खेतों कें दोनों छोरों पर फूले टेसू ऐसे सजते थे मानों आज प्रकृति किसी दुल्हन की डोली बनकर सजी बैठी है। कौन है वो दुल्हन जिसके लिए प्रकृति ने ऐसा सतरंगी शृंगार किया है, उस पर मध्याह्न की किरणों के सुनहरे रंग से सजी डोली नैनाभिराम सौन्दर्य के अलंकार गढ़ रही थी।

फागुन की चंचल हवा भी विदाई के गीत गाती फिरती थी। कभी पिया मिलन की सुखद छांव कभी मातबिछड़न का वेग लिये कभी शीतल लगती, कभी उष्ण। इस मदमाती पवन की शहनाई सी धुन पर वृक्ष नृत्यांगनायें बन ठिठोली कर रहे थे। पक्षियों का कोलाहल जैसे जगत् भर को विदाई का बुलऊवा देता फिरता था, आज प्रकृति ने ऐसा अदभुत रूप धरा था, जैसा सिया की विदाई की डोली हो।

खेतों में फसलों की बालियों पर यौवन आ चुका था, पशुओं के झुण्ड भरपेट भोजन का आल्हाद लिये इस खेत से उस खेत दौड़ते फिरते थे। सब किसान अपने अपने खेतों पर फसलों की रखवाली करते दिन रात डटे थे।

लिखनी कक्की ओ लिखनी कक्की! तुमाए खेतन में रूझवा घुसे हैं, लिखनी के पास एक बालक दौड़ता हांफता हुआ आकर बोला।

लिखनी ने उसी बालक से पूछा – *भिन्ने नईयां का उते? मैंने तो खबर पहुँचाई ती खेतन पे रहे।*

'न दाई भिन्ने चाचा तो शाला बाबा के इते फड़ पै हैं।'

लिखनी का हृदय जल उठा, क्रोध का आवेग लिए लिखनी शाला बाबा की तरफ भनभनाती चल दी ।

लिखनी जुए की फड़ पे जमे भिन्ने को चिल्लाती चली जा रही थी और साथ में बड़बड़ाती जाती,

अबकि बरस तना खेत अच्छे भए हैं,
सो जो हुल्कीपरो रखा लौ नईं सकत,
जो कछु हतो सो पी गओ, अब जित्तो है
ओऊ खें चाटें जात, पियें सें फुरसत नईयां नाटपरे खें,
महामाई परै ई हुल्कीपरे पे, जो तो कहो
मैनें खेत इके नांव न करे नईं तो खेतऊ डकार जातो।

कहाँ भगी जात लिखनी का हो गओ? गली चलते लोग लिखनी से प्रश्न करते लेकिन लिखनी अपनी ही धुन में दौड़ी जा रही थी।

लिखनी लगभग अपना गला फाड़ते हुए भिन्ने के पास पहुँच गई नशे में धुत भिन्ने दांव पे दांव लगाते जा रहा था, पत्नी के सारे गहने, घर के बर्तनों से लेकर हर चीज भिन्ने जुए में हार चुका था, घर में खाने को बड़ी मुश्किल से होता लेकिन उसकी लत न छूटती, लिखनी से पहले ही न्यारा हो चुका था इसलिए उसका उसे कोई मान, ध्यान कुछ न रहता था, बहू भी लिखनी को लाख गालियाँ देती फिर भी लिखनी भिन्ने को न छोड़ पाती थी, इकलौती सन्तान बची था, पहले चार लड़के चार पाँच बरस के होकर मर चुके थे सो इस पर से मोह की छाँव न छूट पा रही थी।

लिखनी ने भिन्ने को जुए के फड़ पे देखकर उस पर अपनी चप्पलों की बरसात कर दी, गालियाँ देती जाती, मारती जाती –

'हुल्की परे इत्ते जमो है,
उते रूझवा सबरो नास करें जात, तोखें महमाई परै'

लिखनी ने कुछ देर सांस ली और भिन्ने के साथ जमे जुआरियों को भी गालियों का प्रसाद देना शुरू कर दिया –

'अरे तुम्हाई नास होबे तुम्हाओ घर दोर नईयां का
गाँव भरे खें नसाएं डारत, इनखैं नईयां
कोऊ सम्हारें बालो, सबके सब सांड भए फिरत हैं।'

लिखनी के क्रोध के वेग से नशे में चूर किसी जुआरी की हिम्मत न हुई की कुछ बोल सके सबके सब तितर-बितर होने लगे।

लेकिन गाँव के लोगों ने अवश्य हुजूम लगा लिया। नशे में धुत भिन्ने इधर गिरता, उधर गिरता और चिल्लाता जाता–

'अरे हट्ट डुकरिया! तैं को होत मोखें मारें बाली,
आज मैं तोरो कतल कर दे हों'

और लिखनी की तरफ लपकता लेकिन धड़ाम से गिर पड़ता। लिखनी ने अपनी तसल्ली भर भिन्ने पर चप्पलों से वार किया।

गाँव वाले जमा हो गये थे उनमें से कुछ कहते *'अरी छोड़ दे तोरई आंत जाओ आए मारइ डार है का?* तो किसी की आवाज आती

'सुधार दे आज तो ईखें
पूरे गाँव भरे में साँड बनो फिरत है
जीखें देखो ऊखे गारीं देत औ गैल चलत छैंक लेत।'

हल्केराम और गोकरन डॉक्टर के यहाँ से लौट रहे थे उन्होंने भी शोर सुना तो शाला बाबा के चबूतरे की तरफ मुड़ गये, इसी जगह पर जुए के दांव पेंच लगा करते थे। वहाँ पहुँचे तो देखा तमाशबीन बने लोगों के मध्य लिखनी भिन्ने की गालियों और चप्पलों के साथ जमकर धुनाई कर रही थी, भिन्ने अपनी अम्मा को गरियाता, नशे में धुत गिरता पड़ता था, हल्केराम ने झटके से चिल्लाया–

अरे भौजी का करतीं, छोड़ो।

लिखनी माथा पीटते हुए धड़ाम से धरती पर बैठ गई, धोती के छोर से मुँह पोछते हुए कहा –

लाला! आज तो बिरम्हा उतर आएं
मैं उनऊं की न सुन हों, प्रान ले लये
ई लरका ने इसें साजो तो होतई मर जातो
जैसें चार मरे सो पांचवे के लाने रो लेती
आज जो दुर्दिन तो न देखनें परतो।

हल्केराम कुछ समझाने को हुए तो गोकरन ने पीछे से पिता के कांधे पर हाथ रखते हुए आँखों से सम्वाद किया और कहा छोड़िये घर चलिए क्योंकि भिन्ने को सभी जानते थे, वो किसी दुर्दान्त कसाई से

कम न था, न ही उसकी जीभ में कोई लगाम हुआ करती थी, छोटे बड़ों का सम्मान तो कभी किया ही नहीं, हल्केराम भी उसकी हरकतों का कई बार शिकार हो चुके थे और तो और अब तो विधायक सुबीते सिंह का हाथ भी उसके सिर पर था इसीलिए अब तो वो किसी को अपने आगे कुछ समझता ही न था, ऐसा लगता था सुबीते सिंह के बाद नेता वही बना बैठा है।

गाँव भर से थाने का डर दिखा के पैसा ऐंठ लिया करता था। राजनीति की डगर होती ही ऐसी है जिसमें देवता भी प्रवेश करें तो शक्ति का घमण्ड एवं दुरुपयोग करने से अछूते न रहें, फिर वो तो भिन्ने था जिसकी नस-नस में बेईमानी और अत्याचार भरा पड़ा था।

फिर भी हल्केराम पीछे न हटे, भिन्ने लिखनी के साथ हाथापाई करने पर उतर आया था, हल्केराम तीव्र स्वर में बोल पड़े-

रे भिन्ने! मताई है तुमाई ई पे हाथ उठा हो!

उसे लिखनी के पास से दूर हटा दिया। उधर लिखनी रोती जाती लेकिन उसके हाथ से चप्पल न छूटती थी, हल्केराम ने लिखनी से कहा -

भौजी घर की लड़ाई देहरी पे आ जाए तो
अच्छो नईं रहत।
मान मर्यादा को कछु ध्यान धरो और जाओ घरे।

गोकरन ने अबकि बार पिता से कह ही दिया -

'बाबू चलो घरे, इनको तो जो सब चलतई रहत,
बे तुमाई सुनत नईयां काए खें
अपनी जुबान खराब करत, अपनो मान अपने हाथ।

हल्केराम ने गोकरन की तरफ मुख करके कहा-

कैसी मूर्खतापूर्ण बात करते हो,
यहाँ पे आग लगी है
और तुम कहते हो अपने घर में चादर ताने बैठे रहो।

गोकरन तिलमिलाया सा बोल पड़ा–

ओढ़े रहिये ये आदर्शवाद का दुशाला
एक दिन यही सबसे बड़ा बैरी सिद्ध होगा,
करो जो करने *और वहाँ से निकल गया।*

पिता की तबियत ठीक नहीं ये जानते हुए वो आगे वाले पीपल के चबूतरे पर बैठ गया।

हल्केराम लिखनी को समझाते रहे, उधर भिन्ने के मुँह से गालियाँ ही बरस रही थी –

'रे पण्डित जो सब तोरई कराओ आए,
छोड़ हों न तोखें,
मर गई होती तो आज ऐसें मो पे सवार न होती'

आखिरकार लिखनी रोती किलपती जमीन पर पसर गई, कुछ महिलाएं उसे सान्त्वना देती उसके पास बैठ गई। जमीन पे लड़खड़ाता भिन्ने उठ खड़ा हुआ, लड़खड़ाते शब्दों ने जो धार ली उसका अंदेशा तो किसी ने न किया था,

'रे बम्हना अब बम्हनाई न चल है,
अपनो जो ज्ञान अपने सपूत खें बांट'

मुँह से गालियों की बरसात करता हुआ भिन्ने चीखा –

अरे अब बे जमाने चले गये
जब हम पे हुकुम चलाउत रहत ते
और हम महाराज, महाराज कर के सुनत रहत ते,
अब तुमाए कपट खैं खूब जानत,
अरे जे होतई कपटी हैं सारे धूर्त बम्हना।'

हल्केराम शराब का दोष समझ उसे बोलते जाते –

'भिन्ने होश में नईयां, ढंग सें बोल!'

लेकिन मदांध भिन्ने पर तो आज राजनीति का दानव सवार हो आया था, रक्तवर्णी आँखों को जबरन खोलते हुए बोला –

अरे हट्ट बम्हना! मैं सब होस में हों मोखें न बता,
सारे तुमाए पुरखन ने हम पे कित्ते जुलम करे,
काए हम नईं जानत का, अब हम सब कछु जानत?

इस कुरुक्षेत्र में खड़े सभी महारथियों को भी नेता जी की बातों का भान हो आया और सभी ने भिन्ने के सुर में सुर मिलाते हुए कहा–

'हल्के महाराज भिन्ने नसा में भलो है
लेकिन बात सौ टका की कहत,
अब सब कोऊ जानन लगो है।'

विस्मित से हल्केराम आज अभिमन्यु बन ऐसे चक्रव्यूह में खड़े थे जहाँ चारों ओर कौरवों की सेना उन पर आक्रमण करने को सज्ज खड़ी थी। आज तो हल्केराम का न शरीर साथ देता था न वाणी, वे समझ न पा रहे थे आज ये समाज का कैसा नग्न चित्र प्रकट होता है और वो समाज जिसके पोषण के लिए वे कभी किसी त्याग से नहीं डिगे उसी में उनके लिए आज ऐसी वैमनस्यता।

हल्केराम ने कहा –

'भइया हम सब तो दुख, पीड़ा,
व्यथा के साझीदार रहे हैं
आज हमारे बीच सदियों की गाथायें कहाँ से आ गईं?
मैंने भी अभाव की वही भीषणता भोगी है जो तुमने,
किन्तु आज ये कैसा मंचन किये जाते हो तुम लोग।'

हल्केराम बोले जा रहे थे लेकिन आज नियति ने कुछ और ही निश्चित कर रखा था।

भिन्ने बड़बडाता हुआ हल्केराम पर झपट पड़ा, हल्केराम जमीन पर गिर पड़े, पूरा समाज आज भिन्ने के इस कृत्य पर मौन की धूल ओढ़े खड़ा रहा। अपमान का नाग डसता रहा और मूक सन्नाटे से ये सब हल्केराम के आत्मीय देखते रहे। कुछ लोगों ने भिन्ने को पकड़ा लेकिन अनहोनी हो चुकी थी।

पिता के इतनी देर तक न पहुँचने पर गोकरन भी इस संग्राम स्थल पर पहुँच गया, धरती पर माटी मे लथपथ निढाल पड़े पिता के विस्मय भरे सजल नेत्रों को देखकर उसे स्थिति समझने में देर न लगी, अब तक उसके हृदय में जो चिंगारी थी पिता का अपमान देख ज्वाला सी धधकने लगी, गोकरन के नेत्रों के श्वेत कागज पर क्रोध की ऐसी लाली उतर आई थी जो अद्यतन किसी ने न देखी थी। पिता के तिरस्कार की ज्वाला ने गोकरन के मानसिक विप्लव पर डली नियंत्रण डोर को राख कर ही दिया, उसने झपटकर भिन्ने की कमीज पकड़ ली।

आज मानो सूर्य देव अपनी प्रचंडता का वहन करते हुए उसके मुख पर सवार हो गये थे, गोकरन ने भिन्ने पर जैसे ही हाथ उठाना चाहा हल्केराम ने पीछे से उसे रोक लिया, लोगों ने भी गोकरन को खींचकर भिन्ने से अलग किया।

भिन्ने दांत पीसते हुए बोला –

'तुम सवर्णन खें उनकी औकात अब मैं दिखा हों,
सही कहत हैं, तिलक तराजू और तलवार
इनखें मारो जूते चार और बो पहलो जूता मोरो है ।

जूता उतारकर गोकरन और हल्केराम की ओर उछाल दिया, इस पूरे उपद्रव में भिन्ने अब तक शब्द बाण ही चला रहा था लेकिन जूते के बाद अब अपनी जेब झटककर बन्दूक निकालकर गोकरन पर तान दी।

आशंकाओं से पूरा क्षेत्र थर्रा उठा, आज क्या इस गाँव में गोली चलेगी, हल्केराम आज जीवन का जो रूप देख रहे थे उसकी तो कल्पना भी नहीं की थी।

गरजता हुआ गोकरन बोला –

चला बन्दूक दम है तो,
अगर मैं मरूंगा, तो तू भी न बचेगा।'

भिन्ने की तरफ से अट्टाहस भरी हंसी के स्वर आकाश को आन्दोलित करते हुए बोले –

को मार है हमें? पुलिस!, सरकार!
हा हा हा.....सब हमाई है,
सरकार भी पुलिस भी और गवाही को दै है
जे गाँव वाले, काए दै हो रे?

सब पीछे हटते चले गये। गोकरन ने चारों ओर घूरते गाँव वालों को देखा किसी में इतनी ताकत न थी कि समय की इस विपरीत धारा के समक्ष ढाल बनकर खड़े हो सके, गोकरन ने अपने पिता के नेत्रों में संघर्ष, विस्मय, अपमान और मृत्यु की ऐसी छाया को देखा जो आज से पहले कभी न दिखी थी।

आखिर ये कैसा व्यापार है जीवन का, जिसने सारा जीवन बस दूसरों के जीवन के लिए अर्पण कर दिया, आज उसका ऐसा तिरस्कार, मनुष्य बरछी, तलवारों बन्दूकों के वार से जीवन संध्या में भी लौट आता है किन्तु तिरस्कार का दावानल जीवन समाप्त करके ही छोड़ता है। आज हल्केराम को भी तिरस्कार का विष दिया गया था, वो भी उन लोगों ने जिन्हें वे अपने जीवनधारा का अंश माना करते थे।

आज पिता की आदर्शवादिता उसे भीतर तक कचोटे डाल रही थी किन्तु वे बेड़ियां इतनी मजबूत थीं कि उनकी जकड़न से गोकरन चाहकर भी न निकलने पाता था, उस धधकती ज्वाला से गोकरन जल रहा था उसके भीतर की मानवता नि:सहाय सी खड़ी थी। क्रोधरथी आत्मा की ध्वनि को रौंदे डालता था, विषधर सा फुफकारता गोकरन पिता के हाथों से स्वयं को मुक्त करने का प्रयास कर रहा था।

तब हल्केराम बोल पड़े –

बेटा पशुओं सा व्यवहार मनुष्यों के लिए नहीं होता,
जब मनुष्य मनुष्य के सुख दुख का व्यापार करने लगे
तब उसका एक ही धर्म रह जाता है धन और शक्ति!
किस किस से लड़ोगे ये तो पूरे समाज में फैला विष है,
आज मेरे संस्कार ही मेरा एकमात्र सम्मान रह गया है
उसकी आहूति मत दो बेटा!

कहते-कहते हल्केराम निढाल से चबूतरे पर बैठ गये, पिता की संवेदना गोकरन के क्रोध भरे नेत्रों में गंगा के समान उतर आई, शायद अब यही संस्कार मात्र हल्केराम का मान बचे थे।

उधर भिन्ने की पत्नी को भी शाला बाबा में चल रही महाभारत की भनक लग गई, अब गाँव भी वैसा न रहा था कि एक दूसरे की सहायता करता, इसका प्रमाण अभी ही तो सत्यापित हुआ था, जबसे चुनाव हुए सहसा ऐसा मानसिक परिवर्तन हुआ था जिसकी कल्पना सहज न थी, अब लोग ऐसे कारनामों का आनन्द लिया करते थे।

गोकरन पिता को अपने कांधे का सहारा देकर उठा ही रहा था कि भिन्ने की पत्नी दहाड़ती हुई चबूतरे पर पहुँच गई, अब तो संग्राम और तेज होना तय था, सौधी ने भी इस महासंग्राम की दर्शकदीर्घा में खड़े सभी लोगों पर अनवरत गालियों की झड़ी लगा दी, धीरे-धीरे लोग सरकने लगे।

सौधी हल्केराम को देखकर और भी आग बबूला हो उठी क्योंकि यही एक शख्स था, जो भिन्ने को समझाया करता था, लेकिन हर बार भिन्ने और उसकी पत्नी उनका अपमान करने में कोई कसर न छोड़ते थे, इस बार भी कुछ ऐसा ही हुआ, जोरदार करतल ध्वनि करती हुई सौधी बोली -

'महाराज तुम अपनी हरसचन्दई कभै छोड़ हो,
हमने तुमाई पछीत खोदी का
जो हमाए पछाऊं परे रहत।'

गोकरन के भीतर की दबती ज्वाला को सौधी ने फिर भड़का दिया, आँखें निकालता हुआ गोकरन चीख पड़ा -

'बस अब और न बोल देना, बहुत कुछ हो गया है।

हल्केराम गोकरन का हाथ और जोर से भींच आगे बढ़ने को हुए लेकिन अब गोकरन का स्वयं पर से नियंत्रण समाप्त हो चुका था, पिता का करतल भी अब उसकी जिह्वा पर नियंत्रण न करने पाता था।

गोकरन ने घेरे के बीच में खड़े हो सिंहगर्जना की –
बस कीजिए! आप लोग....
इतिहास के नाम पर वर्तमान को और कितना नोंचेंगे, इतिहास अपना जीवन जीकर चला गया और हमारे लिए शिक्षा छोड़ के गया था कि बंटते मनुष्य एक जड़विहीन समाज की रचना करते हैं,
रीढ़विहिन पीढ़ी को जन्म देते हैं,
लेकिन हमने तो इतिहास को ही अपना अस्त्र बना लिया और लगे एक अन्य घायल बिलखता इतिहास लिखने... वो भी सिर्फ इसलिए कि आने वाला वर्तमान फिर इतिहास के नाम पर खुरचा जाए नोंचा जाए।
कब तक ये चक्र चलायेंगे,
समाज सभी प्रकार व्यक्तियों की समष्टि है,
सभी का संतुलन बनाए रखना किसी एक की नहीं हम सब की जिम्मेदारी है।
कुछ स्वार्थफरोश लोगों ने आपको चन्द इतिहास की गणनायें सुनाई और आप लगे ढोल पीटने....
आप में से कोई बताए क्या ये ब्राह्मण कभी आपकी सहायता के लिए पंक्ति में अग्र नहीं रहा......
लिखनी काकी! कहिए हृदय पर हाथ रखकर जब आपके इस अपने ने आपको मरने के लिए छोड़ दिया था तब किसने तुम्हारे जीवन की रक्षा की थी वो भी अपने सुख को, अपनी सन्तान के प्रति दायित्वों को किनारे रखकर और आज ये अत्याचारी हो गया।
और मतईयाँ काका! जब ये लोग इस इंसान को तिरस्कार का विषपान करा रहे थे तब आप भी तो यहीं थे, क्यों आगे नहीं आए जबकि ये ही वो सवर्ण है जिसने तुम्हारे बेटे को बचाने के लिए अपने घर की आखिरी पूंजी भी तुम्हारे हाथ पे धर दी थी, तुम्हारे बेटे के भविष्य के लिए

अपनी सन्तान के भविष्य को छोड़ दिया, एक बार ये भी नहीं सोचा कि बीज नहीं डलेगा तो ये जमीन अन्न कहाँ से देगी।

यहाँ खड़ा हर एक इन्सान बताए जिसके लिए इस ब्राह्मण के मुख से कभी अपशब्द निकला हो, जिसकी किसी न किसी रूप में सहायता न की हो

और आज आप सब मौन फांककर इसका मानभंग करवाते रहे आपकी आत्मा ने एक बार भी नहीं झकझोरा। आज सहसा ये अत्याचारी हो गया वो भी सिर्फ इसलिए क्योंकि किसी नेता ने कह दिया है, वाह तालियाँ बजाइये।

हाथ जोड़ विनती है रोक लीजिए इस अनिष्टकारी विप्लव को, यहाँ प्रत्येक अपना कर्म करता है,

ये इस समाज का हमारा आपका दायित्व है कि मनुष्य को उसके कर्मों से परखें इतिहास की किताबों से नहीं, इतिहास शिक्षा देने के लिए है, घायल करने के लिये नहीं।

जो लोग आपके पीछे का संबल बन खड़े हैं, वे केवल कुर्सी के सगे होते हैं, कब आपको खाई में धकेल देंगे पता ही न चलेगा, जिनकी सह पर आज ये वैमनस्यता जन्मी है मत भूलिये ये आपको ही खा जाएगी।

आप भी इसी कतार में खड़े हैं सज्ज रहिये आपका नम्बर भी आएगा, तब आपको इस वैमनस्यता के जूते से बचाने वाला कोई नहीं होगा और न इस घृणा की बन्दूक के समक्ष कोई आपकी आड़ लेने खड़ा होगा, इसलिए इस अंधण को अपने कांधे का प्रयोग न करने दीजिये।

तभी सन्नाटे में गूँजती गोकरन की आवाज को सौधी की आवाज ने काट दिया –

'वाह महाराज... भाषन तो अच्छो दै लेत,
अपनो घर सम्हारो, हमें औरन खें न बताओ।

कभी अपने पुत्र को देखते कभी सौधी को हल्केराम का हृदय आज व्यथाओं की समस्त सीमाओं का लंघन कर चला था, बेटे के मुख पर दृष्टि डालते तो नया गोकरन बन जैसे समक्ष आ खड़ा हुआ है, एक भय भी था और एक संतोष भी, आज गोकरन बड़ा हो गया था। अविराम जिह्वा संग्राम करती सौधी को देखते तो स्त्री की एक ऐसी छवि मानसिक नेत्रों के समक्ष आ खड़ी होती जिसकी कभी उन्होंने कल्पना ही नहीं की थी, अब तक तो वे यही जानते थे कि स्त्री ही होती है जो पुरुष को या तो सन्मार्ग पर चला सकती है या फिर उसे पतन के गर्त में धकेल देती है।

ये वैमनस्यता का दावानल कहीं इस भूमि को रक्तरंजित न कर दे इस भय से हल्केराम सिहर उठे और गोकरन पर गरजते हुए बोले-

बस करो बेटा!

मैंने इस गाँव में किसी की सहायता इसलिए नहीं की कि उसका मुझे कोई सूद चाहिए,

हम कोई व्यापारी तो हैं नहीं, मैंने जो अपना कर्त्तव्य समझा वही किया और जब तक जीवन है करता रहूँगा।

ये गाँव, ये धरती, ये लोग मेरे प्राणों में बसते हैं, ये भले ही मुझे स्वयं से पृथक् कर दें लेकिन मैं इन्हें कैसे दूर कर दूँ, जिस दिन ऐसा हुआ उस दिन मेरे प्राण सूख जाएंगे।

मेरी प्राणनदी इसी धरती पर जन्मी थी और यहीं सूख जाएगी, संभवतः वो समय आ गया हो।

सभी निःस्तब्ध खड़े थे, चारों ओर मौन कोलाहल करता था। पिता की बातों से गोकरन सहम गया, शिथिल होते पिता को कांधे का सहारा देकर लेकर चल दिया।

सौधी ने पुनः विजयी योद्धा सी हुँकार भरी, किसी की हिम्मत न थी कि उसके साथ कोई तर्क वितर्क करे।

शान्त हो चुकी लिखनी, बहू की हुँकार सुन कैसे दबने वाली थी, आखिर सास के मान का सवाल आन खड़ा हुआ था, लिखनी फिर चप्पल उतार कर भिन्ने पर बरस पड़ी, अब तक जो रार लगती थी, थमी जाती है, उसमें फिर हवा लग गई।

अब बात दोनों सास बहुओं के बीच आन पड़ी, अब तो युद्ध छिड़ना लाजिमी था, लोग भी इस महासंग्राम का आनन्द लेने में पीछे न थे, कुछ मुँह दबाए हंसते जाते कुछ आलोचना करते।

तमतमाई दांत किटकिटाते हुए लिखनी बोली–

'अरी बड़ी सिंहनी सी गरज रई, मारत हों
अपने कोख जाए खें और मार हों,
का करत तें दिखों तो।

लिखनी की इस ललकार ने सौधी के मन में और आग भड़का दी वैसे भी आमतौर पर स्त्रियों के लिए पति कितना भी अत्याचारी क्यों न हो लेकिन समाज के समक्ष कदाचित् देवता ही हुआ करता है और तो और घर में उनके साथ कैसा भी व्यवहार करें लेकिन जब बात सड़क पर आ जाए तो चण्डी रूप धारण करने में समय नहीं लगता और अपने राक्षस पति की ढाल बनकर खड़ी हो जाया करती हैं। भिन्ने की पत्नी इन्ही किस्मों में से एक थी, सौधी गुर्राई –

'बाई छोड़ दे नईं तो बताऊत जात,
तोरो दओ नईं खात खेलत,
बाप को दओ खात और अपनी छाती फारत सो पीयत!'

अब तो सौधी लिखनी के वंश तक बात ले गई थी सो चुप कहाँ रहने वाली थी, उसने सौधी का हाथ झटक कर फेक दिया बोली–

'काए अब तैं मोखें मार है का, हाथ लगा खें दिखा
टोर खें धर दे हों, और कौनऊ दूसरो बाप ल्याओ
तो का ई हुल्कीपरे खें, हतो तो मोरई खसम।'

सौधी की क्रोधाग्नि को और हवा लग गई उसने लिखनी को एक जोरदार धक्का दिया और पति का हाथ पकड़कर घसीटती गालियां बरसाती निकल गई। अन्ततः दो घण्टे चला ये संग्राम अब घर की तरफ मुड़ गया।

इधर पिता पुत्र के मध्य सन्नाटे की नदी सी बह रही थी, जो कुछ गुजरा था वो हल्केराम के लिए काल के कटाक्ष से कम न था, अपने हृदय स्पंदन से प्रश्न करते जाते थे –

'तुम्हीं बताओ आज ये कौन सा ब्रह्मपाश....
मुझे बांध रहा है? ये कैसी विरक्ति हो रही है?
ये कैसा मायाजाल है? ये कैसा मोह मुझे जकड़ रहा है?
मैं इन पाशों से कैसे युद्ध करूं?
आज विधाता ये कैसा संकेत दे रहे हो?

अपने भीतर की सूखती व्यथाओं, पीड़ाओं और भावनाओं को किनारे कर हल्केराम ने अपने बेटे मार्ग के बरगद तले बैठने को कहा।

गोकरन का क्रोधावेग कुछ मद्धम पड़ने लगा था, दोनों के मध्य की शब्दशून्यता को तोड़ते हुए हल्केराम ने कहा –

बेटा! आज फिर वही कहता हूँ जो सदैव से कहता रहा हूँ, अपनी जड़ों से कभी न कटना, इस समाज ने हमें जो नहीं दिया उसका क्रोध अपने हृदय से सदैव के लिए निकाल दो, क्योंकि कहीं भी जाओगे आज ऐसा ही समाज तुम्हारा स्वागत करेगा।

इतनी तीव्रता, इतना वेग अच्छा नहीं, जीवन बहने का नाम है, इसमें आने वाले ज्वार भाटों से यदि क्रोध से लड़ोगे तो अनिष्ट को आमंत्रण दोगे, किन्तु सहजता तुम्हारा पूरा जीवन सरल बनाएगी।

आशंकाओं की गुत्थियां चाहे कितनी भी गहरी गुथी हों उन्हें धैर्य एवं सरलता से सुलझाना क्योंकि शीघ्रता और

क्रोध कभी किसी का लाभ नहीं करते इसलिए सदैव हृदय को निर्मल रखना, इसमें किसी प्रकार की अग्नि का स्थान नहीं होना चाहिए।

अपने धर्म को सदैव सर्वोपरि रखना, तुम्हारा धर्म है मानवता, सहजता, एवं कर्त्तव्य, तुम्हारे कांधे पर लहराता ये जनेऊ मात्र सूत्र नहीं है, ये मैं हूँ जो सदैव कर्त्तव्यों का प्रतिबिम्ब बनकर तुम्हारी स्मृतियों की संवेदनाओं को जागृत करता रहेगा, तुम्हें प्रत्येक कष्ट में स्वाभिमान के साथ दृढ़ता प्रदान करेगा।

गोकरन के नेत्रों में उतरी क्रोध की लालिमा को पिता ने सूत की उज्जवलता से धो दिया था। प्रायः हल्केराम गोकरन से धर्म, मानवता जैसे भावों पर चर्चा करते रहते थे किन्तु आज न जाने क्यों पिता की बातों में ये किस प्रकार की ध्वनि झंकृत हो रही थी, मन के भावों को गोकरन ने शब्दों का आकार देकर पिता से पूछा –

बाबू आज आप ये कैसे बोल रहे हैं?
कुछ तकलीफ है तो फिर चलें डॉक्टर के पास?

हल्केराम के मुख पर एक हल्की सी मुस्कान पसर गई,

'नहीं बेटा! समय है ये तो बहता ही रहता है,
इसका पान करने लोग आते हैं चले जाते हैं
और ईश्वर से बड़ा डॉक्टर कौन हो सकता है,
अब हमें घर चलना चाहिए।'

बेटे के कांधे को लाठी बना थरथराते कदमों से हल्केराम उठे और घर की ओर चल पड़े। गोकरन और हल्केराम घर पहँचे तो सुदामा आंगन लीपती दिखाई पड़ी।

सहसा न जाने क्यों सुदामा को देखकर उन्हें सौधी का ध्यान हो आया, कितनी अद्‌भुत होती है स्त्री एक ओर सौधी जो अपने पति के कुकर्मों पर बड़ी सहजता से परदा डाल देती है अनेकों बार तो उन कर्मों पर गर्वानुभूति

करती दिखाई पड़ती है और दूसरी ओर मेरी कुलवामा सुदामा, जीवन के पचास बरस गुजर गये आज तक इसने कभी एक शिकायत की रेख तक नहीं निकाली, पूरे गाँव ने इसकी वाणी की तीव्रता तो कभी सुनी ही नहीं और मुझसे भी कभी रार नहीं ठानी, जो इसका सर्वजयी अधिकार था।

जब भी किसी समस्या में होता हूँ तो संबल बन पीछे खड़ी दिखाई पड़ती है, जब भी किसी गलत दिशा की ओर मुख करता हूँ तो सामने आ खड़ी होती है, मैंने तो कभी इसे कुछ दिया ही नहीं न ही कभी इसने मांगा, आखिर किस माटी की बनी है ये, अभाव में भी आल्हादित रहती है, शायद सच्चे अर्थों में स्त्री यही होती है, यही गुण इसे महान् बनाते हैं, जो हम पुरुष चाहकर भी नहीं कर सकते।

सुकोमल दूध सी धुली दुल्हन बनकर आई थी मेरे इस आंगन में, हमनें आज तक इसे क्या दिया, ये पैबंदी लत्ते और सूखा अन्न। धिक्कार है! मुझ पर ऐसी देवी स्वरूपा का मैं कभी मान न कर पाया, मैंने इस सौन्दर्य और त्याग की देवी को सौन्दर्य ठठरी सा समेट कर रख दिया, चमकती काया को सूखी चर्म कर दिया, जिसे महलों में होना चाहिए मेरे आंगन में इस गोबर में सनी फिरती है, फिर भी मुझको अपने माथे पर अपने गर्व सा सजाए घूमती है।

क्या मैं इस देवी द्वारा प्रदत्त सम्मान के लायक हूँ। हे विधाता! ये कैसा भाग्य लिखा है तूने अपने इस प्रतिबिम्ब का?

आज मैं इसपर कितना भी मान करूं लेकिन उससे मेरे कर्त्तव्यों की हार, विजय में परिवर्तित तो नहीं हो सकती।

धिक्कार है मुझे! मैं सभी के लिए अपनी मानवता परोसता रहा और घर की मानवी का मैंने किस प्रकार तिरस्कार किया। न जाने क्यों आज ये क्षोभ मुझे खाए जाता है, मैं क्या उपचार करूं जो इस महामानवी को उसका मान दे सकूँ।

ये सब ध्याते ध्याते न जाने कब हल्केराम के नयन सजल हो उठे, अंग शिथिल पड़ने लगे, ये कैसा भार हृदयगति को विलुप्त किये जाता है। आंगन से तकती सुदामा ने हल्के की अवस्था भांप ली और शीघ्रता से हाथ धोकर पानी लेकर पहुँच गई –

'का हो गओ तबियत ठीक नईयां का,
कछु पिरात है का, अंसुआ काए बह रए,
अपने आँचल से मुँह पोंछते हुए कहा।

हल्केराम कुछ न बोले सुदामा की ओर अपलक निहारते हुए सिर हिलाकर न में उत्तर दिया, फिर तो सुदामा और व्यग्र हो उठी–

'गाँव में जो भओ उखें जी पै लै लओ का?
गोकरन ने बताई लिखनी और भिन्ने की लिड़ाई,
जो भओ सो भओ मैं तो पहले सें कहत ती
अब जो गाँव उसो नईं रहो जैसो तुम समझत हो,
अब जी खैं शान्ति देओ।'

हल्केराम अपने लरजते होठों से आज सब कह देना चाहते थे किन्तु अब ये वाणी भी बैरी हुई जाती है, उनके मुख से कोई शब्द न निकला अपने कांपते हाथों से सुदामा का हाथ थामने का प्रयास किया लेकिन जीवन भर का साथी हाथ भी बैरी हो निढाल सा खाट पर गिर पड़ा, सुदामा ने पति के गिरते हाथों को अपने हाथों में सम्भाल लिया, यही तो विवाह वेदी का वचन था।

उस प्रिया वामांगी का हृदय द्रवित हो उठा, अपनी नेत्र गंगा को रुकने का आदेश देकर सुदामा हल्केराम के रक्तरंजित हृदय पर पुनः प्रेम, सहनुभूति का लेप लगाने का प्रयास करती रही –

'अब बे जमाने गए
जब जो गाँव कुटुम्ब जैसो रहे करत तो,
अब कोऊ खां कोऊ सैं मतलब नईयां,
जो कोऊ बीच में बोलो सो बो दुसमन,
तुम काए खैं पछाऊं परे रहत,
अपने आप निपटें सुरझें।'

सुदामा हल्केराम के ठण्डे पड़ते हाथों को महसूस कर रही थी, उसका मस्तिष्क बारम्बार संकेत दे रहा था किन्तु हृदय अनहोनी की आशंका का सत्य स्वीकार न करना चाहता था।

हल्केराम चाह कर भी कुछ न बोलने पाते थे, वे बस सुदामा का मुख निहारते और अविरल आँसू बहा रहे थे, आज की संध्या में जैसे सारी श्वासों का हिसाब हो रहा हो, अपने जीवन का न जाने ये कैसा आभास हो चला था, हृदय पटल पर सारी स्मृतियां खेलने सी लगी थीं, बालपन का स्वछन्द आनन्द, अपनी माता की अंक का स्वाद, पिता से ग्रन्थों के साथ-साथ जीवनकला का पाठ, वो शैशव का हंसना खिलखिलाना, सुदामा का उसके जीवन में आना, सन्तानप्राप्ति के लिए जतन करना, गोकरन का गोद में खेलना, उसके प्रश्नोत्तर। अपनी सफलताओं असफलताओं का न जाने कैसा लेखा मानसिक नेत्रों पर छाता जाता था, नेत्र धीरे-धीरे सिकुड़ते जा रहे थे, सांसों की गति तेज हो चली थी।

भय से विवर्ण मुखी सुदामा जोर से चिल्लाई -

गोकरन......सिन्धु ....
देखो तो...... जे बाबू काए इत्तो रोउत.....
जानें कैसें सांसें ले रहे.....

सुदामा घबराकर रोने लगी, गोकरन और सिन्धु भी दौड़े आए, सिन्धु घूंघट काढ़े पैरों के नीचे बैठ गई, गोकरन ने बाबू का सिर गोद में लिया और अनहोनी से भयग्रस्त हो बार बार पूछता -

का हो गओ बाबू तकलीफ है?

सभी आंसू बहाए जाते थे तभी सुदामा ने कहा *अरे का पूछत जा डांक्टर खें भगत जा*, गोकरन हड़बड़ाता आँखें मलता डॉक्टर के यहाँ दौड़ गया। इधर सुदामा बिलखती जाती और बार-बार पति को कसम दिलाती -

'तुम्हें हमाई सों

कछु तो बोलो की भओ का है, कछु तो कहो।'

आज प्राणशिखा का अंत था, अन्तिम टिमटिमाती जीवन लौ को बचाये हल्केराम हृदय का सारा गुबार निकाल देना चाहते थे, लेकिन सिसकियां और टूटती सांसें उन्हें न जाने क्यों मुँह से शब्द ही न निकालने देती थीं, आज वे अपनी इस संगिनी को कह देना चाहते थे-

निरभ्र गगन की इस मधुर तारिका को मैंने छलनी कर डाला, तुम मेरा मान हो, गर्व हो, किन्तु फिर भी तुम्हारा मान न रख सका, उसके लिए क्षमा कर दो।

अपने बेटे से अपनी असफलताओं के लिए क्षमा माँगना चाहते थे, उसके जीवन की बगिया को उपयुक्त जल न दे सके, उसके लिए संघर्षों की ये तपती धरती छोड़े जाता हूँ, इस अपराध के लिए क्षमा कर देना।

जब कभी इन संघर्षों के सम्मुख हारने लगे तो इस पिता को क्षमा कर देना।

आज मेरी सारी विफलताओ संघर्षो का बोझ मेरा जीवन अब उठाने से इनकार करता है, बस संघर्षों और संस्कारों की यही विरासत छोड़े जाता हूँ, हो सके क्षमा कर देना।

हे प्रिये ! मेरे आत्मज ! अब मेरी आत्मा को मुक्ति का दान दो, अपनी अश्रुगंगा से मेरा तर्पण करो, मुझे क्षमा करो! काल से किसी की मैत्री नहीं हो सकती, क्षमा का भी समय कहाँ देता है, अंततः नेत्र से जल का एक मोती गिरा, एक आवाज निकली।

गोकरन बचाओ और जीवन का समय समाप्त!

सारे मान, अपमान, संघर्ष, सुख, दुखों को धरती के लिए छोड़ हल्केराम अनन्त में विलीन हो गये।

फागुनी एकादशी की इस निस्तब्ध सन्ध्या में एक भयानक आँधी क्षितिज को धूलधूसरित कर गई, दिवालोक अन्तर्धान हो चुका था। प्रकाश का एक तेजपुँज उस फूस के उदास छपरे से निकलकर विराट् अन्धकार में निष्प्रभ हो गया।

द्वार पर पहुंचे गोकरन के कदम वहीं ठिठक गए, सुदामा की एक तेज चीख जैसे सब कुछ कह गई। अब बहुत देर हो गई संध्या की लालिमा में रक्तवर्णी नृत्य करती मृत्युदेवी प्रकृति की सुसज्जित डोली में आत्मा की दुल्हन को विदा करा ले गई। अंततः तिरस्कार फिर अनिष्ट का मूर्तिमान् प्रमाण बन गया।

डॉक्टर ने उस कालखाट पर पड़े शरीर की नब्ज देखी, हृदयगति सुनी, किन्तु माटी की धुन तो मात्र विधाता ही सुन सकता है, नेपथ्य से गगनभेदी वेदना की चीखों के साथ मिश्रित धुन गूँज उठी–

'रहियत हैं भारे की बखरी,
रहियत हैं भारे की लाल,
किवार किवरियाँ एकऊ नहियां,
बिना कुची तारे की बखरी,
रहियत हैं भारे की लाल,
अरे हमें कौन वारे की बखरी,
रहियत हैं भारे की लाल ।'

॥13॥

क्षितिज के नीले होते अंधियारे से जैसे कोई शब्दहीन गंगा विकराल रूप धारण कर गोकरन को झकझोर गई, चंद्रमा से टपकी स्वेद बूंदों ने गोकरन के विवर्ण अंगो को भिगो दिया।

गोकरन झटके से अपनी खड़ारी खाट से उठ बैठा, जैसे अभी पिता की अन्तिम श्वास को विदाई दे के आया हो। कहते हैं बीता समय वापस नहीं आता लेकिन आज की निशा गुजरे वक्त को फिर गोकरन के सामने ले आई थी, आखिर क्यों?

नभ की ओर देखते गोकरन को ध्रुव से अटल नक्षत्र मण्डल में विराजमान उसके पिता जैसे संदेश दे रहे हों कि अपने रक्त की भाषा को पढ़ो, इसकी लिपि का पहचानो। लेकिन गोकरन शब्दहीन अन्तहीन व्यथा के आवरण तले कुछ इस तरह दबा था कि अपने भीतर की लिपि को पहचान ही न पाता।

अपने कांधे पर स्वेद से भीगे जनेऊ को हाथ में लेकर बिलखता रहा, प्रश्न करता रहा –

हे पिता! ये समस्त विश्व की वेदना
अशब्द होकर क्यों बहती है?
मैं क्यों इस माया के महावरण को
अनावृत नहीं कर पाता हूँ?
ये कैसा तिमिर व्यूह मेरे दृगों पर छाया है?
इससे बाहर आने का रास्ता क्यों मुझे दिखाई नहीं पड़ता?

आकाश की तरफ उठे नेत्र इस तारामण्डल में बैठे पिता से प्रश्न पर प्रश्न करते जाते, लेकिन उत्तर ने तो जैसे इस अन्धकार से बाहर न आने की शपथ ले ली हो।

गोकरन की व्यथा का रुदन सुन सिन्धु जाग गयी,

'का हो गओ?'

प्रायः पौरुषत्व अपनी व्यथा के अश्रुओं को स्त्री के समक्ष न बहने देने का आदेश पारित कर दिया करता है ।

कछु नहीं, अन्यमनस्क हो गोकरन ने कहा।

अपनी चिन्ता को शब्दों में डुबोकर सिन्धु ने पूछा –

रोऊत ते का.......काए इतनो सोचत रहत?

कुछ सकुचाते हुए गोकरन ने कहा–

'नहीं कछु नहीं वह जो काल बह चुका
उसके कुछ छींटे आँखों में पड़ गये थे।

पति पत्नी के इस संवाद में सहसा मुनिया की आवाजों ने छेंक लगा दी।

मुनिया चिल्ला रही थी, *'अम्मा.....फिरसें ट्टटी लगी',* सिन्धु चिन्तित हो बोली, *जाने का हो गओ मोड़ी खें? रात भर में छह दइयां दस्त हो गये।*

गोकरन परेशान सा बोला –

काए, कछु खाओ तो है नईयां दस्त कैसे हो गये।

सिन्धु ने आशंकित होते हुए कहा

सात दिनां सें पत्ता, कुदई खा रई स्यात
एई सें पेट में मरोड़ें उठती हो हैं,
जाने कौन पत्ता नुकसान कर गओ,
कुदई तो उसई दस्ताओर होत।

सिन्धु उठकर मुनिया के पास चली गई।

गोकरन इस अनकही मुसीबत की दस्तक को समझ गया था, फिर सोच में डूबता, उखड़ता जुगत लगाने लगा कि शायद कल मुनिया को डॉक्टर के पास ले जाना पड़े उसके लिए पैसे कहाँ से आएगें। डॉक्टर भले अपनी फीस छोड़ भी दे, दवाई तो लेनी पड़ेगी। कोई देसी दवाई की जुगत हो जाए तो अच्छा है,

हाँ! महली के खेत में, बेल लगी है, कल तोड़ लाऊंगा।

महली का बेल वाला खेत उसका ही तो था आह! वो गलती न की होती, गोकरन ने ठण्डी सांस भरते हुए स्वयं को उत्तर दिया, लेकिन खेतों की स्मृति ने तो फिर अपने किवारे खोल दिये थे, गोकरन पुनः सोच में डूब गया, अपनी गलती को कोसने लगा, काल से अनुनय करने लगा कि फिर वही दिन लौटा दो बस एक बार, मैं अपनी त्रुटियों के परिणाम को बदल लूं, काश ये सम्भव हो पाता। निद्रा देवी तो गुजरे काल को नेत्रों में जीवित करके चलीं गई, अब इससे पार कैसे हो गोकरन प्रश्नोत्तरों में डूबा रहा।

भोर की गोधूलि बेला हो चली थी, कुछ ही देर में सूर्य भगवान भी प्रगट होने के लिए सज्ज होते थे, इसलिए इस डूबते तारामण्डल में बैठे पिता को कुछ देर और निहार ले यही सोचकर दाएं हाथ से अपने जनेऊ को सहलाता, बाएं करतल को अपनी तकिया बना गोकरन फिर खाट पे पड़ रहा। सिन्धु भी मुनिया के साथ आ पहुँची थी, मुनिया कुछ कांपती सी लगती थी, कांपेगी क्यों न एक तो सात दिन से अन्न नहीं गया उदर में, ऊपर से दस्त लग गये। मुनिया खाट पे फिर सो गई।

सिन्धु ने अब सोना उचित न समझा, पंछियों ने अंगड़ाई ले ली थी, चांय........चांय.......करते वे भी अपनी माताओं से क्षुधातृप्ति की गुहार कर रहे होंगे, तो उनकी मातायें उन्हें भोर की प्रार्थना के लिए प्रेरित करती होंगी। धीरे-धीरे कलरव बढ़ने लगा, सूर्य देव भी सज्ज हो प्रगट होने लगे।

सिन्धु ने बखरी लीप ली थी, कांधे पे धोती धरे बखरी की कुईया पर स्नान को चली गई। मुनिया ने अबकि बार खाट पे ही दस्त छोड़ दिया। श्रवन चिल्लाया

'अम्मा ओ अम्मा.....
जिज्जी ने खटिया पे टट्टी छोड़ दई।'

सिन्धु धोती किनारे धर मुनिया के पास छपरे में दौड़ी गई, पहले तो उसके माथे पर एक चपत लगाई और बोली

मुँह सें बक्कुरत नई बनत तो का?

माताओं की बेबसी प्रायः सन्तानों पर ही निकलती है। खाट को पनारे पर रखकर धोती जाती और झल्लाती जाती।

बखरी में दातून चबाता गोकरन ये सब उपक्रम देख रहा था, शीघ्र ही कुल्ला किया गमछा उठाकर बाहर को निकलते-निकलते बोला, *कहूँ बेल लगी हो है तो टोरें ल्याउत मोड़ी खैं आराम मिल जै है*, गोकरन झपट घर से निकल गया।

सिन्धु ने सफाई कर दी फिर स्नान को चली गई, तभी भोर की ये हवा फिर बेईमान हो गई, पड़ोस से रोटियों की महक चुरा लाई और बच्चों की नाक के पास छोड़ दी। दोनों क्षुधात्रसित आत्माएं बार-बार एक दूसरे मुँह ताकती लेकिन निर्णय न ले पाती थी, तभी श्रवन बोला

अम्मा सपरन गई। चलो जिज्जी!

हाय रे समय! जिस स्वाभिमान ने कभी मृत्यु के समक्ष भी हाथ न पसारा था, वो क्षुधा किसी के समक्ष आंचल पसारने को विवश किये देती थी। नौनिहाल क्या जाने मान स्वाभिमान की बातें उसे तो बस तृषा को संतुष्ट करना आता है, यदि उस पर कोई बंधन लगाए तो, बालपन की चोरी अपराध की श्रेणी मे कौन ला सकता है?

मुनिया, श्रवन लेखनीराम के घर के दरवाजे पर झांकते हुए पहुँच गये, आंगन में जलते चूल्हे पर रोटी का कलेवा बन रहा था, अपने नन्हे नेत्रों से बरसती क्षुधा और मुख पर परिलक्षित होता अन्न का त्राश लिए मुनिया और श्रवन लेखनीराम की बहू सिजिया के सामने जाकर खड़े हो गये, भूखे देवताओं को देख यदि मानवीय हृदय न पिघले तो धिक्कार है, मानवता पर; धिक्कार है, समाज पर और धिक् है ऐसे नारीत्व पर, ममत्व पर! लेकिन न तो मानवीयता पिघली, न समाज और न नारीत्व, कर्कश स्वर में सिजिया अपनी बखरी से चिल्लाई,

'अरी ओ महराजिन जिजी! सुनती की नईं सुनतीं....
अरी ओ महाराजिन जिजी!

सिन्धु स्नान करती थी, जल्दी से धोती लपेटे बाहर अहाते मे आई, *'का है सिजिया! काए चिल्लात भोरई सें?'*

सिजिया - *हओ जिजी! तुम्हें तो चिल्लाबो लगत,*
अपने ई राजकुमार राजकुमारी खें सम्हारो
आ गये सबेरे सें चूल्हे के नीरे ठांड़े
हमाए अन्न खें निरखत।

सिन्धु के पांव तले की धरती हिल गई, दौड़ती भागी गई, अपने हृदय के स्पंदन को साहस देती और बुदबुदाती जाती, *कहूँ मुनिया के बाबू न देख लैं नई तो आजई सब बारो न्यारो हो जै है।* बांह पकड़कर खींच लाई, एक-एक हाथ दोनों की पीठ पर दिये दोनों नौनिहाल चीत्कार करते जाते,

अम्मा हमऊँ खें रोटी खाने, तुम काए नई बनातीं,
सिजिया चाची कहां तो बन रईं।

सिन्धु ने चांटे तो बच्चों को मारे थे लेकिन उसके निशान उसकी आँखों में तैर रहे थे, सहज होते हुए अपनी आँखों को धोती से रगड़ते हुए अपने मान को ढकने सिन्धु फिर बखरी में आ खड़ी हुई, और स्वयं को सहेजते हुए बोली -

'अरे सिजिया! मोड़ी खैं लग रए दस्त, डाक्टर ने मना करी रोटी न दइयो सो जे जिद्द पे अड़े रहत, रोटी बनाओ...रोटी बनाओ.. अब एक खैं बनाओ तो दूसरे खैं कैसें रोक लैंहों, एई सैं नई बनाउत रोटी, आज तुमाए इते महकीं सो पहुँच गए।'

सिजिया अकड़ते हुए बोली -

सम्हार खैं राखो जिजी, बे तो लरका बच्चा आएं तन तन से, तुम तो बड़ीं हो, साजो नई लगत ऐसो।

गलियारे से गोकरन आता दिखाई पड़ा तो सरपट सिन्धु घर के भीतर चली गई और बच्चों को समझाने लगी कि

'बाबू से कछु न कहियो, नई तो बे सुन्दा मारन लग हैं, फिर उनके हाथ कैसे घल हैं समझ ल्यो।'

दोनों बच्चे सहज होकर बोले *'हओ अम्मा न कै हैं।'*

सिन्धु ने दोनों को छाती से चिपकाते हुए कहा –

अभै जिजी खैं दस्त लगत न, दस्त में रोटी खाओ तो और
खराब हो जात, जिजी के दस्त ठीक हो जाएं।

दोनों बाल सहज हो अपने माटी के खिलौनों पर रोटियां सेकनें लगे और सिन्धु अन्न की आराधना लिए सूर्य देव को अर्घ्य देने लगी।

गोकरन भी आ गया, दोनों को खेलता देख कुछ संतोष की सांस ली, बेल का फल सिन्धु के हाथ में धर दिया,

'मुनिया खें घोर खें पिबा दइयो,
दस्तन में राम चाहे तो आराम लग जै है।'

सूर्य देव को जल अर्पण कर सिन्धु बेलफल को घोरने बैठ गई, मन में बुदबुदाती जाती '

ई सैं आराम मिल जाए तो ठीक है, नई तो का कर हैं।
खाएं खें तो पैसा नईयां डाक्टर खें भरें खें कहाँ सें आ हैं,
भगवान सुन्दा मरे खें मारें पे उतारूं रहत।

रात भर बह चुके जीवन की लहरें गोकरन को जलाती रहीं थीं, आज भुनसारे से ही जब से आँख खुली है तबसे मन्दिर वाले कुएं के जल से स्नान करने का जी होता था और सबेरे जब फल तोड़ने गया तो उजड़ी पड़ी अपनी पिता की संजोई बगिया को देख उसका मन और विचलित हो उठा था। गोकरन ने धोती उठाई और सिन्धु को आवाज दे निकल गया,

'जा रहे आज देवीन के कुआँ पै सपर हैं, देर हो जै है।'

कांधे पे धोती धरे हाथ में बाल्टी लोटा और रस्सी लिए गोकरन खेतों की ओर निकल गया।

सिन्धु चकित हो गोकरन को देखती रह गई, इतने वर्षो में आज मन्दिर वाले कुएं की स्मृति कैसे उजागर हो गई। कदाचित् जब समस्याओं की गहनता होती है तब स्मृतियों की सुलभता विपदाओं से

युद्ध करने का संबल बनकर सामने आया करती हैं, गोकरन भी तो विपदाओं पर विजय पाने का अस्त्र खोजता फिरता था, किन्तु न तो अस्त्र मिल रहा था न ही सहानुभूति का सहारा क्योंकि जब कुछ नहीं हुआ करता तब सहानुभूति मानवीय हृदय का सर्वोत्कृष्ट औजार होती है।

कुऐं के चारों ओर बिखरे सूखे पर्ण, मिट्टी, कटीली झाड़ियां और तमाम जहरीले जीव जन्तुओं ने अपना बसेरा कर लिया था। जबसे गोकरन ने ये खेत बेचा था तबसे इधर की ओर से कम ही गुजरता था, स्मृतियों के खंजर रह-रहकर उसके प्राणों को उसकी भूल के लिए विदीर्ण किया करते थे।

कुऐं की जगत पर अपनी धोती रखकर वहाँ पड़ी चंद सूखी झाड़ियों की समष्टि बना उसने मन्दिर को बुहारा, कुऐं के चारों ओर पड़ी मलिनता को स्वच्छ किया। जेठ का महीना था, उस पर सूखा झेल रही धरती की गोद में भी पानी भी विलुप्त होने की सीमा तक पहुँच चुका था, कुऐं के आस पास उसके पिता ने बहुत से पेड़ लगाये थे, जो सूखे तो थे लेकिन उनकी जड़ों की गहनता के कारण कुऐं में पानी था किन्तु प्रदूषित, सूखे पत्तों ने जल को ढक रखा था।

आज गोकरन उस पूरे स्थान को ऐसे बुहारता था जैसे उसके माता पिता स्वर्ग से उतरकर इस देवी विग्रह के समक्ष उसकी व्याधियों के निवारण हेतु याचना करने आने वाले हों, उसके लिए भविष्य की शाखाओं को सुदृढ़ करने का मार्ग सुझाने आने वाले हों।

मन्दिर और कुऐं के आस-पास गोकरन ने पर्याप्त स्वच्छ कर दिया, अब कुएं से पानी निकालकर अपने ऊपर डालता जाता था, जैसे आज उसका सम्मान, उसकी मेधा, उसकी कुशाग्र बुद्धि के ऊपर जमी बरसों की धूल को धो रहा हो।

अपने मन से उस द्वन्द्व के निकालने का प्रयास कर रहा हो जिसने माता पिता के अनुग्रह का भी निरादर किया था। अपने रेगिस्तान हुए हृदय को सिंचित कर वो दरार भरने का प्रयास कर रहा था जो इस समाज के ठेकेदारों ने उसकी कुशाग्र बुद्धि को कुचलकर डाली थी। वो

कुऐं का जल भी जैसे पिता बनकर उस पर स्नेह सिंचन कर रहा था।

गोकरन ने देवी विग्रह का जलाभिषेक किया, मन्दिर को लीपा बुहारा, सूखे पुष्प वृक्षों का सिंचन किया। धरती महक उठी जैसे बरसों से प्यासी इस धरा को इसी प्रेमजल की प्रतीक्षा थी।

गोकरन माता के सम्मुख हाथ जोड़ बैठ गया, माता के नेत्रों में अपनी विपदाओं का हल अन्वेषित करने का प्रयास कर रहा था, आज वर्षों बाद इस मन्दिर में पग धरा था, पिता मानो सिसकियाँ बनकर उसके नेत्रों से झरने लगे, जैसे कह रहे हों बस कीजिए माँ!

आज जैसे क्षितिज पर बैठे गोकरन के माता पिता उसके मन के भेदों को गुप्तचर से पढ़ते हों, हल्केराम गोकरन की सिसकियों में बैठ माता के नेत्रों में झांकते हुए अपने आत्मज की विपदा निवारण की गुहार लगा रहे हों। गोकरन के नेत्रों में विराजी सुदामा, देवी माता से अपनी सन्तान की विपत्ति निवारण की झोली फैलाए खड़ी हो। अशब्दित प्रार्थना से माता का हृदय आन्दोलित तो होना ही था।

क्षितिज पर सूर्य का आलोक बिखर चुका था। बैलगाड़ी नववधू की डोली लिए भागी जाती थी, देवी मन्दिर के घण्टों की ध्वनि सुन डोली ठहर गई। बड़े बुजुर्ग हाथ में नारियल लिए, माता के मन्दिर पर पहुँचे, जनेऊधारी व्यक्ति को देख समझने में देर न लगी, वरयात्रा प्रमुख ने कहा, *'राम...राम... पण्डित जी।'*

गोकरन विस्मय से पीछे मुड़ा, यहाँ आने वाले तो न के बराबर होते हैं, ऐसे में अब उसके हृदय को उद्वेलित करता ये कौन आया है?

कुछ प्रश्नमुखी हो वरयात्री ने पूछा,

'पण्डित जी नारियल फोर दै हो का,

मैया के चरणन में?

गोकरन ब्राह्मण अवश्य था लेकिन पुरोहित कर्मों से दूर ही रहा था, पिता ने जब संस्कृत पढ़ने का विकल्प उसके समक्ष रखा था तब भी उसने इंकार कर दिया था।

आज वो भूल भी उसकी स्मृतियों के समक्ष मानवी बन खड़ी हो गई, काश पिता का कहा मान संस्कृत ही पढ़ ली होती तो संभवतः कुछ निदान समक्ष होते। उस पूजेक्षु ने फिर प्रश्न किया –

पण्डित जी! ओ महाराज! बताओ फोर दै हो का?'

गोकरन की तन्द्रा टूटी तो उसने निःशब्द सहमति प्रदान कर नारियल देवी के चरणों में विखण्डित कर दिया, नारियल से एक जलधार फूट के उसके मुख पर आ पड़ी, जैसे देवी ने आशीर्वाद दिया हो। वर-वधू ने देवी के चरण स्पर्श कर गोकरन को प्रणाम किया और पाँच रूपये गोकरन के हथेली पर धर दिये।

गोकरन ने कहा – *नहीं नहीं.....इसकी जरूरत नहीं...*

वर के पिता ने कहा –

पण्डित जी रख लो
नारियल छूँछे हाथन नईं फुरवाओ जात,
जा तो आपकी दक्षिणा बनतई है।'

इतना कहकर वधूडोली अपने गन्तव्य की ओर निकल गई। गोकरन कभी देवी के प्रसन्नचित नेत्रों को देखता, कभी हथेली पर धरे पाँच रूपये।

समय जैसे स्थिर सा हो गया था, वो समझ न पा रहा था,
आत्मा प्रश्नों पर प्रश्न कर रही थी,
क्या माता ये तुम्हारा प्रसाद है या फिर दया?
क्या ये मेरे स्वाभिमान के अनुकूल है?
क्या उसे ये धन ले लेना चाहिए?
मेरे भाव मुझसे खुलकर संवाद क्यों नहीं करते,
क्यों नहीं बताते कि कहीं इस प्रकार
उसके स्वाभिमान के मुख पर कोई हास्य तो नहीं करता।

तभी क्षुधापीड़ित सन्तानों के मुख उसके नेत्रों के समक्ष आ खड़े हुए, गोकरन अपने भीतर के सभी भावों को किनारे बैठ जाने को कहकर देवी को प्रणामकर गाँव की ओर चल दिया।

मुट्ठी में बंधे पाँच रूपये उसे उचितानुचित की तुला में तोल रहे थे, टटोल रहे थे। किन्तु इसी मध्य अपनी झोपड़ी में खिलौने के चूल्हे में रोटी पकाने का स्वांग करते बच्चों की छवियां सारी तुलाओं से उसे विरक्त कर देती थीं, अपने आन्दोलित हृदय को लिए गोकरन लम्बे लम्बे कदमों से बढ़ा चला जा रहा था।

आकाश में जैसे कोई भित्तिचित्र उकेरता जाता था, कोई चित्र उदास होता तो कोई खिलखिलाता। हृदय हर्ष करने से भयभीत हो रहा था, प्राणों में कम्पन होता था लेकिन कोई दिव्य गीत ज्योति के साथ मिलता हुआ उसके साथ हो चला था।

गोकरन अपने मस्तिष्क के अन्तर्द्वन्द्वों, प्रसन्नता को समेकित करते-करते गाँव की एकमात्र दुकान पर पहुँच गया, जिह्वा कहते कांपती थी, कण्ठ सूखा जाता था।

धीमे स्वर में उसने कहा – *लम्बरदार! चून दै दो।*

दुकानदार – *का कही?*

गोकरन ने कण्ठ को थोड़ी तीव्रता दी – *चुन दे दौ।*

लम्बरदार – *कीत्तो दै दें?*

कम्पित हाथों से मुट्ठी खोल के पाँच रूपये दुकानदार के सामने रख दिये। लगभग एक पाव चून गोकरन के हाथ में था। गोकरन स्वयं से प्रश्नों के ऐसे चक्रव्यूह से युद्ध करता चल दिया।

एक मन कहता ऐसा क्या है इस चून में.........
जो इतना विचलित हुए जा रहे हो?
यही चून जब हाड़तोड़ मेहनत करके मिलता था,
तब तो इतना न कांपता था,
आज क्यों इतना विचलित हो......
दूसरा मन कहता पिता की शिक्षा को ग्रहण करने से
इनकार न किया होता तो ये भी जीविका होती तुम्हारी..
फिर क्यों इतने विचलित होते हो?

तभी एक टेढ़ी गठीली लाठी पर अपनी उम्र का बोझा डाले लड़खड़ाती लिखनी कक्की बिलखती इधर से उधर दौड़ी फिरती थी,

'कोऊ तो बचा ल्यो, मोरी अकेली बंसबेल खतम भई जात, कोऊ अस्पताल पहुँचा देयो, बिलखती जाती और कभी इस घर की कुण्डी खड़काती,

कभी राह चलते लोगों से हाथ जोड़ती, लेकिन कोई भिन्ने के पास तक जाने को तैयार न होता था।

कुछ तंज कसकर चले जाते, काए कक्की कहाँ गओ तोरे लरका को सबसैं बड़ो हितैषी ऊ सुबीते सिंह और महली, जिनके दम पै पूरे गाँव भरे में सेर बनो फिरत तो, अब कीरा पर रए सो हमाए इते हाथ जोरत फिरतीं।

लिखनी कितनी बार सुबीते सिंह की कोठी पर माथा रगड़ चुकी थी, सुबीते सिंह अब एम.पी हो गये थे इसीलिए गाँव में रहते ही न थे, सारा कारोबार व्यापार, गाँव भर का भार अब महली सिंह संभालता था और वो तो पूरे गाँव पर आतंक बन फन फैलाए बैठा रहता था, लिखनी ने कितनी बार माथा पटका था लेकिन एक न सुनी, झिड़ककर अपमान कर बार-बार उसे भगा देता।

सत्य है विधि का न्याय यहीं हो जाया करता है। कल तक बन्दूकों और शक्ति छाया की ऐंठ में पूरे गाँव को जूते की नोक पर रखा करता था, आज न वो शक्ति साथ दे रही है न अभिमान। भिन्ने की पत्नी सौधी भी अपने बच्चों को लेकर उसे छोड़ गई। बस लिखनी ही बची थी, माँ का ह्रदय सन्तान के कुकृत्यों और अपराधों को उसकी एक आह पर भुला देता है।

भिन्ने दारू के नशे में नाले में गिरकर घायल हो गया था, गाँव के डॉक्टर ने अपनी सारी सीमाओं के अनुरूप इलाज कर दिया था लेकिन घाव है कि भरता ही न था, डाक्टर ने बड़े अस्पताल ले जाने को कहा था, घाव और गहरा गया था, चौबीसों घण्टे पीप रिसती रहती थी, अब तो घाव में कीड़े भी पड़ने लगे थे। गाँव का कोई भी व्यक्ति

उसके पास भी फटकने को तैयार न हो रहा था। मुँह पर कपड़ा धरे अपने काँपते हाथों से लिखनी उसके घावों को प्रतिदिन धोती लेकिन कोई आराम न मिलता, महिना बीत गया लेकिन इलाज न हो पा रहा था।

मार्ग में सहायता की गुहार लगाते लिखनी गोकरन से टकरा गई, गोकरन के नेत्रों में भूतकाल का वो विप्लव तैर गया, मस्तिष्क में वो क्रूर लीला नृत्य करने लगी, नेत्रों की घृणा को बाहर आने से रोक गोकरन लिखनी को अनदेखा कर घर की ओर बढ़ चला,

लिखनी ने सुबकते हुए पीछे से आवाज दी –
गोकरन! जो कछु भओ ऊ के लानें मैं हाथ जोरत,
पाँव परत तुमाए, मदिद कर देओ ई दुखियारी की
सौ दईयां हाथ जोर बिनती करत,
हल्के महाराज होते तो उन्हें देर न लगती क्षमा दएं में,
उनई धर्मात्मा की सन्तान आओ
तुम येई ध्यान करकें मदिद कर दो।'

गोकरन पीछे मुड़ा लिखनी की ओर घूरता रहा, चाहता तो था, कह दे कि उस वक्त तुम्हारे ये हाथ, तुम्हारी ये वाणी कहाँ गई थी जब तुम्हारा सपूत उन्हीं धर्मात्मा पर मृत्यु बाणों की वर्षा कर रहा था। तुम्हारी तो पलकें भी न झुकी थीं, आज किस मुँह से मुझसे सहायता मांगती हो। गोकरन की नस-नस क्रोध से फड़की जाती थी, लेकिन कांधे पर विराजमान पिता जैसे उसके क्रोध के हाथों को भींचे खड़े थे।

गोकरन लिखनी की गुहार को अनसुना कर हाथ में चून की थैली लिए तेजी से बढ़ता चला गया। तेज हवा उसके कानों से बार-बार टकराती अपना वेग बढ़ाती जाती थी, मानो अनन्त से झांकते पिता ने इस पवन को डाकिया बनाकर भेजा था।

समीर गोकरन के कानों में जैसे पिता के अन्तिम शब्दों का
पाठ करती हुई सी गुजर रही थी –
बेटा! ऐसा तो नहीं था, हमारा गाँव, मेरे जाते ही क्या इस
धरती की मानवता का भी देहान्त हो गया?

ये शिक्षा तो कभी नहीं दी थी मैनें तुम्हें, यदि आज तुम्हारे भीतर की मानवता मरती है तब आज वास्तव में आज मेरी मृत्यु होगी।
मैंने कहा था, मेरे प्राण इसी गाँव में बसते हैं, तो जब तक यहाँ जीवन धड़केगा तब तक मैं हूँ।
क्या आज मेरा रक्त इतना वेगहीन हो गया? जो किसी की पीड़ा देखकर भी नहीं पिघलता।
हा! काश तुमने मेरी रक्त की भाषा को पढ़ा होता।
गोकरन का मस्तिष्क इस सन्देश से तर्क करता –
कौन सा गाँव......
जो आपके तिरस्कार पर भी द्रवित न हुआ था?
कौन से लोग? जिनके रक्त ने आप पर जूते उछलते देख भी उस हाथ को पकड़ने का आदेश न दिया था।
किसके प्रति मानवता की बात करते हैं आप? उस भिन्ने के प्रति जिसने सदैव आपको अपमान और तिरस्कार के अतिरिक्त कुछ नहीं दिया।
हमारे साथ जितने कुकृत्य कर सकता था उसने किये,
कहीं न कहीं अम्मा की मौत का जिम्मेदार
भिन्ने ही तो था।
क्या मैं अपने मातृपितृ हत्यारे को क्षमा कर दूँ.?
कदापि नहीं, कदापि नहीं.....
आप भले इतने महान हो सकते हैं
मैं इस महानता का अंश मात्र भी नहीं बनना चाहता,
घृणा है मुझे ऐसी मानवता से।

अपने द्वन्द्वों से जूझता गोकरन घर पहुँच गया, चून की थैली सिन्धु के हाथ में रखकर खाट पर पड़ गया।

सिन्धु ने प्रश्नवाचक नेत्रों से पति की ओर देखा तो गोकरन ने मन्दिर में घटे सारे वृत्तान्त को कह सुनाया।

सिन्धु ने देवी के हाथ जोड़े और मुस्कराती हुए चूल्हे में लकड़ियां सुलगा दीं। आधा चून सहेजकर धर दिया और आधे चून पर जल छिड़कती जाती और सन्तान के मुख की प्रसन्नता का आलिङ्गन करती जाती।

रोटी की सुगन्ध आज सिन्धु की झोपड़ी में खेल रही थी, घर के पिछवाड़े में घर-घर खेलते मुनिया और श्रवन की घ्राणेन्द्रियों तक भी ये सुगन्ध पहुँचती, लेकिन दोनों ने इस बार उस सुगन्ध से मुँह मोड़ अपने माटी के चूल्हे की आग अधिक तीव्र कर दी और तवे पर पड़ी माटी की रोटी सेंकने का अभिनय करने में जुटे रहे।

सिन्धु ने टेर लगाई -

रोटी बन गई.........

मुनिया......श्रवन आ जाओ बेटा!

दोनों नौनिहालों के कानों ने जैसे अन्न की पुकार नहीं जीवन की पुकार सुनी थी, न जाने कहाँ से शक्ति संचरित हो गई.मुनिया के थरथराते कदम भी तेजी से झोपड़ी के किवाड़ों को जोर से धकेल भीतर पहुँच गये।

आँखों में अन्न की ज्योतिप्रदीप्त होने लगी। रोटी नाम से ही इस पूरी झोपड़ी में स्फूर्ति दौड़ गई।

खाट पर पड़ा गोकरन अन्न मिलने की प्रसन्नता को पीछे धकेल अपने भीतर के तर्क वितर्कों से नहीं उबर पा रहा था।

याचक की दृष्टि लिए सिन्धु को निहारता और सोचता कि क्या करे सिन्धु से भिन्ने के विषय में सलाह लेनी चाहिए या नहीं, क्योंकि सिन्धु सदैव उसके ज्ञान चक्षुओं पर पड़े परदों का अनावरण करती आई है।

सम्भवत: इस द्वन्द्व से उबरने का मार्ग भी सिन्धु के मुख से निकल पड़े लेकिन क्या आज इससे ये प्रसन्नता छीनने का अधिकार है मुझे, वो भी ऐसे व्यक्ति के लिए जो हमारे लिए श्राप से अधिक कभी

कुछ नहीं रहा, हमारी आज की व्यथा का जिम्मेदार कहीं न कहीं ये दैत्य भी तो है –

कदापि नहीं मैं ऐसा कुछ नहीं करूंगा।

गोकरन पलटकर खाट पर पड़ रहा। खड़ारी खाट की सांसों से भूतकाल झांकता सा प्रतीत होने लगा, स्मृतियाँ नाचने लगीं, वो सामाजिक विप्लव, वो उसकी भूलें, वो मरा हुआ बचपन उसकी पुतलियों में उछलता कूदता, इधर से उधर डोलने लगा ।

॥14॥

हल्केराम को गए पूरे तीन बरस हो गए, फागुन की एकादशी ही तो थी, सबेरे से सुदामा चुपचाप अपने छपरे में पड़ी थी, सूती धोती में लिपटी काया को रुग्णता ने चूस लिया था, जिस पति के लिए उसने जीवन भर अभावों को भी उतनी ही प्रसन्नता से उर से लगाया था जितनी प्रसन्नता में कोई धनवान सुख को उरांकित किया करता है, वही आज स्मृति बना दीवार पर निर्जीव सा टंगा है, यह असहनीय पीड़ा, अब और सही नहीं जाती।

उसे कभी अपने अभावों पर व्यथा न होती थी, क्योंकि पति का सानिध्य उसे कभी किन्हीं अन्य विलासों के प्रति प्रीति होने ही न देता था। आल्हाद की मूर्त प्रतिकृति अब पीड़ा का प्रतिबिम्ब बनी थरथराती थी। सुदामा एकान्त अकेली अपनी व्यथाओं की गणना करती रहती, पति की मृत्यु का विश्लेषण करती रहती।

हृदय में बार-बार हूक उठती तो कण्ठ से सिसकियाँ फूट पड़तीं, अपने से प्रश्न करती -

'का दोस हो गओ मोरो जौन कछु कहकें नईं गए,
कछु कह जाते तो तसल्ली बनी रहती।'

आज तो सबेरे से पूजा के बाद से ही अपने छपरे से नहीं निकली थी, सिन्धु कितने बार बुला आई थी, अम्मा कछु तो खा लो, किन्तु सारे शब्द जैसे उसके छपरे की सूनी दीवारों से टकराकर लौट आते। दोपहर चढ़ने लगी थी गोकरन भी खेत से आ गया।

सिन्धु ने व्यग्र होते हुए कहा -

'अम्मा कछु न खाती आएं न बाहर निकरीं सबेरे सें',

गोकरन ने सिन्धु का मुख देखा और अम्मा के छपरे में घुस गया। पीड़ा के वर्ण से रंगा माता का मुख देख गोकरन ने पूछा,

'अम्मा का हो गओ? काए तबियत तो ठीक है?'

सुदामा ने अपनी धोती के छोर को आँखों पर रगड़ा और खटिया से उठते हुए बोली,

'नईं भइया कछु नईं, ऐसई परे ते,
आज तुमाए बाबू की....'

गोकरन अपने अन्तस् की उच्छलित वेदना को दबाए एक गहरी सांस भरकर अम्मा के बगल में बैठ गया। एक शून्य सा छपरे में पसरा था गोकरन भी धरती में मूड़ गड़ाए बैठा था, माता का मुख देखता तो बाबू की स्मृतियों की पीड़ा माता के कपोलों पर ढुलकती दिखती, वो भी तो माता के अंक में पिघल जाना चाहता था। गोकरन ने अम्मा का हाथ पकड़कर कहा –

'चलो रोटी खा ल्यो।'

सुदामा ने गोकरन के कांधे पर ममता का हाथ धरते हुए कहा,

'बेटा! हमें अभे नईं खानें,
तुम जाओ खाओ, बहू बैठी हो है।

गोकरन अपने आप को पिघलने से रोक रहा था लेकिन माता के अनायास स्पर्श से समस्त बांध टूट गये, माता की अंक में मुँह छुपाकर बिलखने लगा, कुछ टूटे, कुछ बिखरे शब्दों से कहता जाता –

अम्मा तुमईं तो अब हमाए लाने सब कोऊ हो,
तुम ऐसें रै हो तो सोचो
जो तुमाओ लरका कैसें जी है।'

बेटे को बिलखता देख अश्रुमुखी माता ने हृदय की समस्त पीड़ाओं की गठरी बनाकर दूर कर दी, उस गठरी से अपने साथ-साथ पिता का वात्सल्य भी चुराया और बेटे के माथे पर हाथ फेरते हुए कहा–

'बाबू चले गए, मताई तो है'
तुमई औरन खें दिख कें तो हमाई छाती जुड़ात बेटा'।

कभी-कभी पीड़ा की चिनगारियाँ छिटक कर बाहर गिरने लगती हैं, उन्हें रोकने का कितना भी प्रयत्न किया जाए लेकिन पीड़ा छिटकों को बांधा नहीं जा सकता।

सिसकियों को दोनों माँ बेटा कण्ठ के भीतर सहेजने लगे। लेकिन शब्दहीन भावनाओं की पीड़ा और स्नेह का समस्त सागर छपरे में तैरता चला गया।

बाहर किवाड़ों की ओट से झांकती सिन्धु भी बिलख पड़ी, अपने आँचल को मुँह पर फेरते चूल्हे की ओर दौड़ी चली गई।

टाठी परस गई, गोकरन अम्मा का हाथ थामे परसी टाठी के सामने बैठ गया, अम्मा ने कौर तोड़ा और मुँह तक ले गई लेकिन रूकते हुए बोली –

'बेटा आज तुमाए बाबू की बरसी है,
कोऊ खें खबा दें तो उनकी आत्मा खैं शान्ति मिल है।'

गोकरन ने जिस दिन से पिता की मृत्यु हुई थी उस दिन से गाँव के लोगों से सम्वाद कम कर दिया था, साथ ही अब गाँव भी उतना सहज न रहा था, एक अनदेखी सी घृणा, वैमनस्यता पूरे गाँव में पाँव पसारे बैठ गई थी।

अब तो आए दिन किसी न किसी के झगड़े, मार-पीट हुआ करती, कोई किसी पर कुल्हाड़ी लेकर दौड़ पड़ता, किसी पर बन्दूकें तन जातीं, अब गाँव पुलिस का तो जैसे घर हो गया था।

महिलायें भी छोटी-छोटी बातों पर रार ठान के बैठ जातीं, एक ऐसी अशब्द नदी बह रही थी जिसमें ईर्ष्या, तिरस्कार, वैमनस्यता के अतिरिक्त किसी भाव का स्थान न था।

ऐसे में किसे बुलाए? क्या कहे? गोकरन समझ न पाता था, किन्तु अम्मा के सजल नेत्रों की पीड़ा और अनुनय के आगे गोकरन बेबस सा हो रहा था, अपनी बेबसी को शब्दों में अवतरित कर बोला-

अम्मा! तुम तो जानती हो, गाँव को हाल,
और अगर कोऊ खें बुला खैं खबा देओ तो
अपने इते कोनऊ सोला ब्यंजन तो धरे नईयां,
जो रूखो सूखो धर दै हैं
सो हंसी करें में देर न कर हैं।'

सुदामा कुछ विचलित सी बोली –

'करन दो हंसी और बड्डे दादा भरे खें बुला ल्यो,
जो है सो खबा दै हैं,
कौन मैं बरात न्यौतें खें कहत।'

सिन्धु ने गोकरन को अपने नेत्रों के संदेश से अग्रिम संवाद करने से रोक दिया। गोकरन ने सहमति जताते हुए कहा,

'ठीक है अम्मा जैसो कहो।'

गोकरन ने अपने हाथों से लौकी की तरकारी और रोटी को मसलकर अपने भीतर की व्यग्रता समाप्त कर ली, होठों पर एक मुस्कान तैर गई, दोनों माँ बेटे ने सन्तोष की सांस लेकर रोटी समाप्त की और थाली को नमन कर उठ गये।

सिन्धु को निर्देश देते हुए गोकरन ने कहा –

बड्डे दद्दा खैं न्योतन जात,
बना लइयो तना कछु ढंग को।

सिन्धु ने मुख से सहमति देकर पति को विदा किया। सिन्धु पढ़ी लिखी भले न थी किन्तु एक कुशल गृहणी के सारे गुण विद्यमान थे, ऐसे समयों के लिए कुछ तेल घी बचा के रख लिया करती थी। चूल्हे में और कंडे गाड़कर, बैल को चारा डालने सिन्धु सार की तरफ चली गई।

'आज सबेरे सैं जो बैला जाने कैसे सुस्त सो बैठो,
भुनसारें डारो तो जो चारो अभे लौ उसई कौ उसई धरो'

स्वगत सम्वाद करती बैल की पीठ पर हाथ फेरती रही, बैल अपने पैरों में मुँह दबाए बैठा था, सिन्धु कहती जाती –

'काए रे पागुर लौ नई करत का हो गओ,
कछु तबियत खराब है क?'

भूसे पर और लालच भुरक के सिन्धु ने उसके सामने एक बाल्टी पानी रखा और चूल्हा सम्हालने निकल गई।

रसीली आलू की तरकारी और पूड़ी बनाकर सिन्धु ने चौका साफ सुथरा किया चूल्हा पोता और छपरे को बहोरने लगी, एक धुली चादर बिछा दी, बाबू की फोटो पूजाघर से उठाकर सामने के अरवे में रख दी।

गोकरन भी बड्डे दद्दा को लेकर आ गया, घूंघट खींच कर सिन्धु ने बड्डे दादा के चरण स्पर्श किये, सुदामा भी भीतर से अपनी धोती से मुख की आड़ किये आ गई और चरण स्पर्श कर दादा को हाथ के इशारे से बैठने का स्थान दिया स्वयं धरती पर आंखें गड़ाकर नाखूनों को खुरचती बैठ गयी।

बड्डे दादा ने हल्केराम की तस्वीर को प्रणाम कर सविनय सुदामा से कहा –

'होनी खैं कोऊ नईं टारत बहू......
दिख तो मैं कभऊं गाँव सें बाहर नईं जात....
पै ऊ दिना आन गाँव चलो गओ, और इत्ती बड़ी घटना हो गई। कोऊ सोच नईं सकत तो कि जौन गाँव खैं हल्के मरत रहो ओई ऊके संगे ऐसो कर है।
फिर गाँव को का दोष जो तो जुगई ऐसो है, हम औरें भोरे-भारे, सो चाएं जोकोऊ कैसऊ पढ़ाए सो पढ़ जात। अब कौन को मुँह पकर हो, पूरो गाँव गरीबी की मार झेलत सो जिने कही तुम ऐसो करो हम तुमाई मदिद कर हैं सो ओई खैं भगवान मान लेत।

धरती में मुँह गड़ाए बैठी सुदामा की सिसकियों से कुछ मद्धम सा स्वर फूटा –

'दद्दा! तुमई होते तो जा अनहौनी न होन पाउती,
इत्ते मानी आदमी, जिन्नें कभऊं हाथ नईं पसारो....
चाएं जित्ते हैरान रहे होबैं,
अपनो सब कछु दै खैं ई गाँव के लानें ठाढ़े रहे,
बो आदमी तिरस्कार कैसें झेल पातो।'

सिसकियाँ बढ़ गई, दादा ने धैर्य बंधाते हुए कहा –
अब जो बिधि ने रच राखो तो सो हो गओ,
अब लरका बहू सम्हारो घर सम्हारो,
आजई के रोज तो ब्याह खैं आई ती,
दिखो तो ईसुर की करनी
कैसी स्यात निकारी सुख-दुख की,
अब तुम सब जने धीरज सें काम करो, बाकी तो
'होई है वही जो राम रची राखा।'
सुख दुख की के बांधे बंधे हैं।

इतने में सिन्धु ने आलू की रसीली सब्जी, पूड़ी और अचार से सुसज्जित पीतल की थाली बड्डे दद्दा के सामने रख दी।

थाली को इस प्रकार सजा देख सुदामा और गोकरन के सजल नेत्रों में चमक आ गई, आखिर पूड़ियाँ उनके लिए सपने सी ही हुआ करती थीं, गोकरन आज अपनी गृहणी पर मान करते न थकता था, जो इतनी तंगी के बाबजूद भी देहरी के मान को बनाये रखती थी।

दद्दा भोजन कर विदा हो गये तभी सार से बाल्टियाँ गिरने की आवाज आई, सिन्धु की बैल के प्रति आशंका बलवती हो गई, सिन्धु सार की तरफ दौड़ी तो बैल अचेत सा पड़ा था, सिन्धु व्यग्रता से चिल्ला पड़ी –

'देखो तो ई बैला खैं का हो गओ।'

गोकरन भागता आया बैल को देखा, छुआ लेकिन प्राणविहीन शरीरों में ठण्ड ठहरती है, रक्त की उष्णता नहीं।

गोकरन ने माथे पर हाथ पटकते हुए दहाड़ मारी –
आजई के दिन विधाता ने बाप की छत ऊपर सें उठा लई
तो आजई के दिन हाथ पांव काट लए, एक बचो तो
सो वोऊ के दिन पूरे हो गये।
अब का हो है, पहलई सें घिसट-घिसट जीयत ते
अब मरबे की सिबा का सोचें।

बेटे बहू की आवाज सुन सुदामा भी दौड़ी आई –

'का हो गओ.... का हो..'

सब कुछ सामने था उत्तर देने को कुछ था ही नहीं। रात हो गई गोकरन के जीवन अध्याय में एक ओर कटु भाग्य का दुर्भाग्य भरा पन्ना जुड़ गया, अब ये व्याधि न जाने कौन-कौन सी विपदाओं की इबारत लिखेगी। आसमान में नियति को झकझोरता गोकरन सम्वाद करता –

'अब और कितना छीनोगे विधाता!
मेरी नियति किस लेखनी से लिखी तुमने,
और क्या-क्या देखना बाकी है, छत पहले ही छीन ली,
जैसे तैसे जीवन का समर लड़ता जा रहा था,
तो अब जीविका कमाने वाला अधूरा अस्त्र भी ले लिया।
क्यों भाग्य मुझे प्रकाश से दूर फेंक रहा है,
और कितने विपन्नता के चित्र उकेरना चाहता है?
मैं मनुष्य हूँ पत्थर नहीं!
वेदनाएं मुझमें भी घाव करती हैं।
कब तक अभाग्य मुझे हाँकता रहेगा?
क्या चाहता है तू विधाता,
कौन से कर्मों का फल दे रहे हो?

सारी रात नींद से लड़ता आकुल जागता रहा, कभी खटिया से उठ बैठता कभी पड़ जाता, लेकिन आज जो दुर्भाग्य ने पटकथा लिखी थी उसका यह अंक समझ न पा रहा था। कल कैसे इस विपदा की लेखनी से अपना भाग्य लिखेगा? कौन सा दरवाजा जीवन बेल को जल देगा? कुछ समझ न आता था। फसल भी कुछ अच्छी न थी, इस साल पाला पड़ गया, पूरी फसल पर जैसे ईश्वर ने कफन ओढ़ा दिया हो।

॥15॥

खरीफ की बुआई का समय आ गया, गोकरन जैसे तैसे एक बैल से काम चला लिया करता था अब वो भी न रहा था, दिन भर खेतों में फावड़ा चलाता, बैलों के स्थान पर स्वयं को जोत रहा था, किन्तु फल कुछ भी नहीं। पूरे गाँव में घूम आया उधार भाड़े पर कोई ट्रैक्टर देने को तैयार न होता, बैल किसी से मांगता तो अपना काम दिखा के इंकार कर देते।

खेत के रास्ते में मतईयाँ अपने ट्रैक्टर से घर की ओर जा रहा था, जबसे बेटे की नौकरी लगी थी, मतईयाँ का स्वभाव सातवें आकाश पर चढ़कर बोला करता था, पिछले साल लोन पे ट्रैक्टर उठाया था, गोकरन ने खेत बखरने के लिए भाड़े पर ट्रैक्टर माँगा तो अभिमान भरे स्वर में बोला –

गोकरन! खूब लै लो ट्रैक्टर... पै उधार पै न दै पा हों।
हमें पैसा लगत बैंक को।
अब दिख समझ ल्यो तुम।

गोकरन ने फिर भी अनुनय भरे शब्दों में कहा –
कक्का! दो तीन दिनन की बात है
हम कौन गाँव छोड़ भगे जात
फसल आई सो पहलो पैसा तुमाओ दै हैं,
किसानी की हालत कौन तुमसें गैर आए,
सब तो जानत हो।

मतईयाँ – *बो तो है गोकरन पै छुट्टन कहत है*
बाबू ज्यादा धरम मे न परे करो नई तो बिक जै हो,
आजकल तो सबई मुफतखोर हैं।

मतईयाँ की बात सुनकर एक आग जैसे गोकरन के शरीर को चीरती हुई निकल गई। गोकरन विषधर सा फुफकारता बोला –

सही कहत हो कक्का बहुत मुफतखोर है जमानो,
और तो और एहसान बड़ी आसानी सें भूल जात।

इतना कहकर तिलमिलाया गोकरन घर की ओर निकल पड़ा। मार्ग में कभी आकाश को देखता कभी कांधे पे लहराते जनेऊ पर ऊंगलियाँ फिराता हुआ प्रश्न करता –

कहाँ हो बाबू! देख लो अपने इस सहोदर मतईयाँ को जिसके लिए एक बार नहीं जाने कितनी बार अपने घर को चूल्हे में झोंक दिया,
अपने लड़के का भविष्य नहीं सोचा इनके लड़के के लिए और आज मुँह पै मुफतखोर कहके निकल गये। ऐसों के लिए मरने के लिए कहते रहे हमें, इनके लिए कौन सी मनुजता दिखाएं।
न बाबू हम तो पथरा भले, अबसें जो हमने कभी किसी के सामने हाथ पसारा तो आपकी सन्तान नहीं।

सूर्य भगवान रश्मियों को धकेल पर्वतों के पीछे विलुप्त हो चुके थे, गोकरन पौंर मे अपने अन्तर्मन का विस्फोट दबाए बैठ रहा, सिन्धु ने पानी दिया, सुदामा कुछ बीमार सी थी, अपनी खटिया से अपने पांवों को सहारा देती गोकरन के पास आकर बैठ गई –

'का भओ भैया, कछु मिलो साधन खेतन के.......'

बीच में ही बात काटते हुए गोकरन बोला,

'नई मिलो, मतईयाँ कक्का हत मुफतखोरन खें
नई देत ट्रैक्टर, सब अपने-अपने खेतन में लगे
और जौं भाड़े करत फिरत उनके तो
दिमाग आसमान पे हैं, आकाश छुअत भाड़ो बताउत।

हाथ जोड़ते हुए गोकरन ने अपने निर्णय का तीर छोड़ा –

बताओ अम्मा! का करें?
छक गये अब हम कोऊ के आगे हाथ न पसार पाहैं
चाहे आसों बिना बीज डरें रह जाएं खेत।'

सुदामा बेटे का मुख पढ़ते हुए उसके भीतर के उन शब्दों को पढ़ने का प्रयास कर रही थी जो वो नहीं कह रहा था लेकिन उसकी आँखों में साफ दिखाई देते थे, फिर भी सुदामा ने कहा – *बेटा! बड्डे दादा से पूछो?*

गोकरन कुछ झल्लाता सा बोला –

'कब लौ उन्हें पेरें उनकी घर गिरस्ती नईयां का और उनको लरका तो खाएं खें दौरत, दद्दा अब हो गए बूढ़े सो उनकी तो चलत नईयां, पूजा पाठ चाएं तो करवा लो, खेती बाड़ी में झकन नईं देत लरका, दिन भर पियत है और अटर सटर बकत फिरत।

मैं कोऊ की न सुन हों चाएं खेत में बीज डरे औ चाएं कभऊं न डरे।

सुदामा मुख मलिन करती भीतर बुदबुदाई – 'बीज न डर है सो का भूखन मर हैं का?'

गोकरन ने सुदामा की बुदबुदाहट पे झल्लाते हुए बोला,

'मर लै हैं भूखन पै अब गिगियात न फिर हैं,
भीख सी मांगत फिरत रहो
कौनऊ के मिजाज नईं मिलत।'

सुदामा अबकि व्यग्र हो अपने स्वरों को कुछ ऊंचा सा करती बोली –

'तोरी तो हमेसा सैं इच्छा है कि जमीन बिक जाबे और कछु नईं, आँखन में जमीन के पैसा डोलत बस और कछु नईं, लेकिन बेटा जी! जो बिधाता खैं धन दैने होतो तो येई जमीन सें दे देतो, जब करम में येई लिखा के आए तो का कर हो।'

अम्मा के मुख से इस कटु सत्य को सुन उसे लगा कोई उसके छुपे घावों को अंकुश से बेध रहा हो।

गोकरन चिड़चिड़ा पड़ा –

'हओ बेचना है, का करो धरती खैं धर खैं चाटें का,
माटी खा कें तो जी नईं सकत न, कौन से सुख दे रही,
साल भर बैलन से घिसो तब दो ज्वार की सूखी रोटी
मिलत ओऊ कभऊं मिलत कभऊं नईं।'

सुदामा अब अपना आपा खो ही बैठी –

'माटी खा कें नईं जी सकत तो पथरा खा कें सोऊ न जी
पा हो बेटा, मति भ्रष्ट भई है सो जाओ बेंच डारो खेत,
काट डारो पुरखन की जरें,
तुम्हाई जर सोई ई धरती में गड़ी।
बाप चले गए धरती सेउत सेउत,
अभे उन्हें गएं तीन बरस बस भए
और फिर ओई राग अलापत, सब बेंच दो,
जो घर, जमीन और अगर कहूँ दाम मिल जाए
तो हमऊं खैं ठाड़ो कर दो बजार में।'

गोकरन अम्मा के तमतमाए मुख पर पीठ करके बैठ गया, द्विधा, ग्लानि, चिन्ता और विपन्नता को कोसता मुँह के भीतर बड़बड़ाता जाता। इसी बीच सिन्धु ने बीच में टोकने की कोशिश की तो क्रोध से लाल नेत्रों से उसे तरेर कर बोला –

अब तुमऊं उपदेश दै लो, इंसान हैं पत्थरा नईयां
कब लौ जूझें, अब नईं होत हमसें,
बिना मोल चुकाए संसार में कोऊ सुखी भओ है
आज तक और कोऊ छाती पै धर खैं नईं लै जात
जमीन जैजाद, जोन उखें छाती सें लगाएं बैठे रहें।

अपने मुख को फिर अपनी माँ की ओर करके बोला –

अगर ऐसई रहो तो मर जै हों घिसटत-घिसटत।

अपने अन्तर्मन के क्रोधरुदन को समेटता हुआ गोकरन बाहर

निकल गया। सिन्धु और सुदामा घण्टों रोते रहे, सुदामा कभी सन्तान की पीड़ा देखती कभी अपनी धरती में बसे प्राण। आज कोई हृदय चीरकर देखे तो व्यथा का अथाह सागर दोनों नारियों के अंतर को राख किये जाता था। अपनी दुविधायें किसके मस्तक पर धरे, किसको अपनी आकुलता कहें, कोई राह न दिखाई पड़ती। ऐसा घना अन्धकार है कि कोई प्रकाश का बिन्दु भी अवलोकित होता न दिखाई पड़ता था। जिस ओर पग बढ़ाते हैं उस ओर माथा विपदाओं की दीवारों से टकरा जाता है। अपनी सांसारिक असफलताओं का दोष किसके सिर डालें, आखिर जायें तो कहाँ जाएं? कहाँ किसके आगे हाथ पसारें?

रात गाढ़ी होती जाती थी, गोकरन अब तक न लौटा था। सुदामा अपने छपरे में खटिया पर पड़ी सिसकती रही। सिन्धु पौंर में बैठी गोकरन की राह देख रही थी। किवाड़ों को दसों बार खोल के देख चुकी थी। ऊंघ आने लगी थी, पौंर की खटिया पर सिर टिकाकर बैठ रही। एक पहर बाद सांकर खड़की, सिन्धु हड़बड़ा के उठी किवाड़ खोले तो गोकरन बाहर खड़ा था, बिना कुछ बोले गोकरन अन्दर आ गया और खटिया पर पड़ गया।

सिन्धु बार-बार गोकरन का मुख देख परखने का प्रयास करती कि गुस्सा कुछ शान्त हुआ या नहीं। गोकरन ने कुछ देर बाद संयमित स्वर में कहा, *का है कछु कहने है?*

सिन्धु ने न में सिर हिलाया। गोकरन ने कहा -

तना एक गड़ई पानी लेत आओ।

सिन्धु तीव्रता से उठी और पानी ले आई और फिर पिढ़ी सरका कर बैठ गई।

गोकरन ने पानी को कण्ठ में उतारा और फिर सिन्धु की ओर विस्मय सा देखता हुआ बोला -

'काए आज सोने नईयां का इतई तपस्या कर हो।'

अपने को सहेजकर सिन्धु बोली - *'ब्यारी न कर हो का?*

गोकरन – *नईं भूख नईं लगी।*

सिन्धु ने बुदबुदाते हुए कहा – *अन्न सें काए को बैर?*

गोकरन – *का कही?*

सिन्धु – *जो कह रए कि का हो जात तुम्हें,*
कभऊं कभऊं हम तो समझई नईं पाऊत।

गोकरन ने उदास चित्रांकन करती आँखों से सिन्धु को तरेरा। सिन्धु रुकना न चाहती थी क्योंकि वो जानती थी कि एक बार रुकी तो फिर टूट जाएगी।

बैला मरो तो उमें तुमाओ दोस?
अम्मा को दोस कि हमाओ दोस?
बूढ़ो हो गओ तो,
अब कोऊ अमरावती खा कें तो आउत नईयां।
समस्या है तो उको समाधान निकारो
जो थोड़ी की जमीन बिकार कर देओ।
बड़े बुजुर्ग कछु कहत तो अपने जान
तो भले के लानें कहत उपे इत्तो तेहा काए को।
जमीन बेंच दे हो मानी पैसा आ गये, पै ऐसो कह सकत
कि बो तुमाई जिन्दगी सरल कर दै है।'

गोकरन ने मुस्कराहट भरी आँखों से सिन्धु को देखा और बोला–

बस येई कसर बची ती..... हम तो जानत ते....
तुमाए बोलें बिना बात कैसे पूरी हो है?
अब अपने उपदेश पूरे करो देवी जी
और हाथ जोड़ उठ बैठा।

सिन्धु लज्जित सी उठकर चल दी, बोली – *आज अम्मा की तबियत ठीक नईयां उतईं सो हैं* । अपनी कथरी समेटे अम्मा के छपरे में घुस गई। पूरी रात गोकरन सो न सका।

सबकी बातों को तौलता रहा लेकिन कहते हैं न जब विपदा ने आपसे गांठ जोड़ी हो तो अच्छी सलाहें भी दुश्मन सी लगा करती हैं। अम्मा और सिन्धु की बातें भी आज उसे बैरी ही लगती थी पूरी रात अपने भीतर बाहर के कोहरामों को उत्तर देता हुआ गोकरन अंततः उसी निष्कर्ष पर पहुँचा जो विधि ने रच रखा था।

प्रातःकाल गोकरन बड्डे दद्दा के यहाँ गया और अपना प्रस्ताव उनके सामने रख दिया।

पालागें दद्दा! हम अपनी जमीन बेंचो चाहत।

बड्डे महाराज चौंक पड़े – *'का कहत रे गोकरन!'*

गोकरन – *हओ दद्दा! अब होत नईयां खेती,*
पहले भी कछु नई मिलत
तो अब बैला अलग मर गओ
सो और सब नष्ट हो गओ,
पैसा के नाम पे टुल्ली नईयां।'

बड्डे महाराज – *'तो का कर है जमीन बेंचें के बाद?'*

गोकरन – *'कछु धंधा कर ले हैं,*
गाँव में बनो तो गाँव में नई तो बाहर जा कें।'

बड्डे महाराज – *'रे जानत नईयां का,*
हल्के खैं कित्ती प्यारी हती जमीन,
जीवन भर तुम्हें समझाउत समझाउत चलो गओ कि
जरें न काटियो चाहे कछु हो जाए
और तुम ओई गत करत,
अभे तो हल्के खैं गएं तीसाला बस भओ,
तोरी अम्मा ने कछु नई कही।'

गोकरन – *'दद्दा सब जानत लेकिन अब समय बदल गओ,*
अब कोऊ काऊ को साथी नईयां,
बाबू के जमाने चले गये।

हमनें तो तय कर लई कि अब जमीन बेंचने है।'

बड्डे महाराज – *'ठीक है भई जैसी तुम्हारी मर्जी,*
पै खरीददार जब अच्छो मिले तभई बेंचियो,
आजकल बेईमानी को जमानो है।'

गोकरन – *हओ दद्‌दा! तुम दिखत रहियो*

कोऊ होबे तो खबर करियो। पालागें चलत हों फिर आ हों।

गोकरन बड्डे दद्दा के घर से निकल गया। पगडण्डियों पर सबेरे से ही धूल उड़ी फिरती थी। लगभग गाँव की आधे से ज्यादा जनसंख्या खेतों में थी इसीलिए चारों तरफ सन्नाटा सा पसरा था। अपने निर्णय को खंगालता हुआ गोकरन खेत की ओर मुड़ गया, वहाँ चारों तरफ कोलाहल सुनाई देता था, खेत की मेड़ पर घण्टों अपने निर्णय को तोलता रहा, भीतर बैठे मानव और अधिमानव उसके निर्णय पर युद्ध करते रहे किन्तु जब समय विपरीत हो तो भीतर के मानव की आवाज भी दब जाया करती है। अपनी अधखुली आँखों से आकाश की भूमिका पर बनते बिगड़ते चित्रों के अंश को निहारता रहा।

गोकरन की पीठ पीछे बड्डे महाराज गोकरन का फरमान घर को सुना गये थे, साथ ही दोनों स्त्रियों को समझा गये कि गोकरन पर अधिक जोर न डालें, इंसान से ज्यादा मोल कुछ नहीं होता, उसका विचलित मन है, कुछ उल्टा सीधा न कर बैठे। दोनों नारियां अपने प्रथम प्रिय धन को सहेजने के लिए अपने मौन को अग्रणी कर, अपने कामों में लग गई। सुदामा की स्थिति ये समाचार सुन और अधिक बिगड़ने लगी किन्तु अपनी पीड़ा किसी से न कहके अपनी खाट पर बेसुध सी पड़ी रही, कभी कभी अपने ईश्वर को अवश्य याद कर लेती।

सूर्य लौटने को थे, गोकरन भी घर लौट आया। झोपड़ी में अनकही सी नाराजगी, व्यथा मुँह औंधा किए बैठी थी, शून्य सा पसरा था, घर में तीन प्राणी थे फिर भी सांसों की ध्वनि के अतिरिक्त कोई स्वर न सुनाई देता, हाँ बीच बीच में अम्मा के कराहने की आवाज अवश्य ये शून्य भंग कर देती थी।

गोकरन फिर चुपचाप खाट पे पड़ रहा अपनी अम्मा को देखता कभी सिन्धु को किन्तु कोई उससे नेत्र संगम करने को उद्धृत न होती थीं। सिन्धु ने जल भरा लोटा गोकरन के सामने पटक कर रख दिया, उसके क्रोध के वेग से लोटे से जल छलक कर मिट्टी को सिंचित कर गया।

गोकरन सिन्धु को ताकता रहा, किन्तु फिर तमतमाया बोला,
मुँह उरमाएं काए फिरतीं,
जो त्रिया चरित्र हमें न दिखाओ
हमें जो करने सो कर हैं, बदलें वाले नईयां।'

उत्तर की प्रतीक्षा लिए गोकरन सिन्धु को देखता रहा किन्तु सिन्धु ने एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला।

उधर सुदामा अपने अन्तर के कोलाहल के बीच मूक रेखा सी खाट पर पड़ी कभी विधाता को कोसती, कभी पति का स्मरण करती, गोकरन के बाबू आज होते तो लरका खें जा अनहोनी करें सैं रोक लेते।

गाँव में बात फैल गई थी कि गोकरन तिवारी अपने खेत बिकार किये है, महलीसिंह की नजर पहले से ही हल्केराम के खेत पे थी, वहाँ पर अपने लिए शराब की भट्टी लगाना चाहता था।

गोकरन के पास जमीन के लिए कई प्रस्ताव आने लगे कोई तीन बीघा खेत का पचास हजार देने को तैयार होता कोई साठ। बड्डे दद्दा ने कई खरीददार भेजे थे लेकिन चार महीने गुजर गये पर किसी के साथ सौदा तय न हो पा रहा था।

महली ने लेखनीराम से गोकरन को खबर पहुँचाई कि प्रधान मिलना चाहते हैं। गोकरन ने पहले तो जाने से इनकार किया लेकिन फिर सोचा प्रधान है, बाप एम.पी. है शायद अच्छा सौदा जम जाये, रही बुराई की बात तो कौन जीवन भर की रिश्तेदारी जोड़ने जाना है। एक हाथ पैसा दें दूसरे हाथ बैनामा करा लैं। सिन्धु और सुदामा हाथ जोड़ती रहीं लेकिन गोकरन ने किसी की एक न सुनी।

गोकरन महली के यहाँ पहुँच गया। पान चबाता महली मुँह के भीतर गुलर गुलर करता सा बोला,

'आओ गोकरन महाराज,
कभऊं इतऊं की गैल भूल जए करो।
एकई गाँव में हमऊं रहत और तुमऊं।'

'फुरसत नई रहत महली ठेकेदार' गोकरन ने कहा।

महली ने पान की पीक अपने बगल में पिच्च की और गोकरन को उसकी कुर्सी के सामने पड़ी खाट पर बैठने का इशारा किया। गोकरन अपने को सहेजता हुआ महली के सामने बैठ गया।

महली – *हाँ तो पण्डित जी, सुनी जमीन बिकार करें। का परेसानी आ गई? हमसें कहते मदद कर देते।*

गोकरन – *नई परेसानी ऐसी कछु नई, बस अब सोचत हैं कछु धंधा पानी कर हैं। जमीन सें कछु होत है नईयां दिन पे दिन हालत खराबई होने।*

महली – *'जा बात तो सई कही पण्डित जी, तो बताओ का दाम लगो अभे लौ।'*

गोकरन – *'पचहत्तर लौ लग गओ।'*

'अच्छा ! हम पचासी देबें तो दे दो हमें। महली ने सीधे-सीधे प्रश्न किया।

'नई ठेकेदार पचासी में तो न हो पा है, सवा लाख सें कम में न बेंच हैं' गोकरन ने ऐंठते हुए उत्तर दिया।

महली – *'गोकरन महाराज कछु ज्यादा नई बोलत तुम, तुमें जमीन बेंचनें की नहीं।'*

गोकरन तुनकते हुए कहा, *'बेंचने न होती तो बिकार काए करी होती।'* गोकरन उठकर चलने को हुआ।

'अरे कहाँ चले महाराज! ठहरो तो न तुमाई न हमाई एक

लाख, इससे ज्यादा कोऊ न दै है महाराज! आँखें घुमाता महली सिंह बोला।'

गोकरन कुछ देर शान्त रहा मस्तिष्क से विमर्श करते हुए बोला- *'ठीक है।'*

महली कुटिल हंसी हंसता हुआ -

'तो पण्डित जी बात पक्की रही,
रजिस्ट्री के लाने नंबर लगाएं देत,
हमारी जान पहचान है ऑफिस में सो जल्दी हो जै है।'

गोकरन ने मुख सहमति दी और उठकर जाने को हुआ। महली खिलखिलाता बोला -

अरे महाराज! सौदा तय भओ
हाथ तो मिलाउत जाओ,

अपनी कुर्सी पे बैठे बैठे हाथ गोकरन की तरफ बढ़ा दिया।

न जाने क्यों उस दिन गोकरन को महली का ये हाथ फांसी के फंदे सा प्रतीत हुआ। गोकरन ने उसकी आँखों में देखते हुए हाथ पकड़ा और भावशून्य चेहरा मोड़कर निकल गया।

पीछे से महली का एक जोरदार ठहाके के साथ आवाज सुनाई दी–

'महाराज बधाई हो सौदा पक्को!'

गोकरन ने पीछे मुड़कर देखा तो उसे जैसे महली में बैठा काल दिखाई पड़ा हो किन्तु गोकरन अपनी आत्मा के नेत्रों की ज्योति बुझा मन के हर्ष में गुमने का असफल प्रयास करता निकल गया।

॥16॥

विधि की विडंबना देखिये जिस धरती के पोषण में जीवन के जीवन लग जाया करते हैं, उसको बाजार में खड़ा कर बेचने में माह भी नहीं लगता। पखवाड़े भीतर रजिस्ट्री की तारीख मिल गई। सबेरे से गोकरन स्नान ध्यान कर सूर्य देव को अर्घ्य दे तैयार हो गया।

सिन्धु ने आज घर में चूल्हा न जलाया था सुदामा तो जैसे आज नेत्रों से सारे विश्व का जल बहाए देती थी। बार-बार कहती -

'भइया! तोरे हाथ जोरत एसो अनर्थ न कर, चेत जाओ!
अपनी जरन खैं न काटो,
तुमाए बाप खैं प्रानन सें प्यारी हती धरती,
अपनी जान सें ज्यादा सहेज कें धरी ती।
उनकी निसानी न बेंचों।'

सिन्धु भी बार-बार हाथ जोड़ती पैर पकड़ती लेकिन गोकरन के सिर पर तो कोई दैत्य सा सवार था। पीड़ा जब द्वार पर खड़ी हो तो किवारे न खोलने के सारे तर्क छलावे मालूम होते हैं। गोकरन को किसी की पीड़ा का लेस मात्र न दिखाई पड़ता, अपने निर्णय से तनिक भी न डिगा और जमीन के सारे कागज पत्रे उठाकर निकल गया।

सिन्धु दूर तक पीछे दौड़ती गई लेकिन महली की गाड़ी में सवार होकर धूल उड़ाता गोकरन आंधी के समान निकल गया। सिन्धु देवी के सामने माथा पटकती रही, सुदामा पति की तस्वीर के आगे माथा पटकती रही लेकिन गोकरन ने अपने भाग्य की अनहोनी खरीद ली थी। अब उसे कोई रोकने वाला न था।

सिन्धु रोते बिलखते घर आ गई, घर की देहरी पर पांव धरते ही बेहोश हो गई। सुदामा ने लड़खड़ाते कदमों से उसको सहारा दे खटिया पे लिटाया पानी छिटका, पानी पिलाया। सिन्धु होश में आई तो सुदामा उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा -

जो होने सो हो गओ
अपने प्रान काए दयें देत
जो लिखा निंगे सो भोग हैं,
बिधाता नें चोंच दई तो चुन दैहैं चाहे जहाँ सें दे।'

सिन्धु ने भक् से उल्टी कर दी। सुदामा के मस्तिष्क में अनकहे उत्तर तैरने लगे। सिन्धु के पीले पड़े मुख की ओर देखती फिर सोच में डूब जाती, सुदामा ने सिन्धु का पेट थथोला,

काए बेटा कछु है का?

सिन्धु करवट ले बिलखने लगी।

सुदामा दुविधा के ऐसे सागर में डूबी कि कुछ कहने न पाती थी, कितने मन्दिर गयी थी सिन्धु को ले लेकर लेकिन कुछ हाथ न लगा और अब जब वंश बेल हरी होने को है तब इकलौती सन्तान ने ही अपनी जड़ें काट लीं। क्या करें खुशी मनाए कि गम? ये कौन सा स्वांग दिखाते हो ईश्वर? न तो रोने ही देते हो न हंसने। हमारे भाग्य के कांटों को हरा कर रहे हो या इन कंटकों के मध्य कोई पुष्प वाटिका बसाना चाहते हो कुछ समझ नहीं आता।

उधर खाट पर पड़ी सिन्धु स्वयं को कोसती कि क्यों न इस अजन्मी सन्तान की सौगन्ध दे पति को रोक पाई। क्यों न कह पाई अब ये धरती केवल आपकी नहीं इसकी जड़ों से जुड़ने कोई और आता है अतः आपका इस पर से सर्वस्व अधिकार समाप्त हुआ, आप इसे बेचने के अधिकारी नहीं रहे। किन्तु हा रे दुर्भाग्य! तूने ये भी न करने दिया। अब क्या दिखाएगा, रोटियों के लिए लड़ते पेट या फिर जीवन के लिए लड़ते बाल भगवान।

खेत का बैनामा महली के नाम हो गया, सांझ ढले गोकरन घर की ओर चल पड़ा। मुखमण्डल पर लक्ष्मी की चमक लिए और हाथों मे लक्ष्मी पूरे एक लाख रूपये। धन की चमक के सम्मुख खेत जाने की पीड़ा मन के किसी भीतरी कोने में दब गई थी, धन के बोझ तले दबी बेचारी सिसक भी न पा रही थी, पीड़ा भी घुटती सी अचेत पड़ गई।

रजिस्ट्रार कार्यालय से गाँव आते तक उसने अपने आने वाले जीवन के लिए नए-नए मार्ग निकाल डाले थे। उसका मन कई हिस्सों में बंट गया था, कोई भाग प्रश्न करता, कोई उत्तर देता। गाँव में दुकान खोले कि पास वाले कस्बे में; नहीं वहाँ से आना जाना महंगा होगा इसीलिए गाँव के बस स्टॉप पे दुकान खोलेगा ताकि हर आने जाने वाला उसके पास से सामान खरीदे।

तभी दूसरा विचार कौंधा नहीं-नहीं इससे सिलाई मशीनें खरीदेगा, थोक कपड़ा खरीदेगा और गाँव की औरतों से कपड़े सिलवाएगा फिर उन्हें बेचेगा शहर जाकर। धीरे-धीरे धंधा जम जाएगा तो बड़ा व्यापार बन जाएगा। ऐसे में गाँव की भी उन्नति होगी और हमारी भी, जब अच्छा पैसा कमा लूँगा सो फिर एक खेत खरीद लूँगा, अम्मा की नाराजगी भी दूर हो जाएगी और अम्मा क्यों अपने बेटे की प्रगति से प्रसन्न नहीं होंगी? अरे! वे तो फूली न समायेंगी। जीवन भर सूती पैबंदी धोती पहनती रहीं हैं, सूखी रोटी खाती रही हैं, अब रेशमी धोती पहनेगी, घी में डूबी रोटियां खाएगी, अरे हाँ! एक गईया भी ले लेंगे।

सिन्धु को अपनी योजना बताऊंगा तो वो भी मान जाएगी, उसका लटका मुँह भी खिल उठेगा, लेकिन उसे तो सिलाई आती ही नहीं फिर वो क्या करेगी, मन का एक हिस्सा प्रश्न करता है, तभी दूसरा उत्तर देता है अरे क्या करेगी आराम करेगी, उसने जीवन में कभी सुख नहीं देखे माँ बाप बालपन में नहीं रहे थे, गरीबी में पली बढ़ी अब पति के राज में भी खटना पड़ रहा है। नहीं नहीं! ये मेरा उत्तरदायित्व है कि उसको प्रसन्न रखूँ। बेचारी का जीवन ही क्या रहा है! उसको सुख देना आखिर मेरा धर्म है, हाँ तो तय रहा सिन्धु और अम्मा कुछ न करेंगी बस अच्छा-अच्छा खायेंगी और आराम करेंगी।

अपने सुनहरे जीवन के विचारों की लड़ों में प्रसन्नता गूँथता हुआ गोकरन घर पहुँच गया। घर पर अभी भी चूल्हा नहीं जला था, दोनों स्त्रियां आँखें सुजाए बैठी थीं। गोकरन के आते ही सुदामा उठ के जाने लगी सिन्धु भी उठने लगी।

गोकरन ने अम्मा का हाथ पकड़ बैठा लिया उत्साहित होते हुए कहा –

देखो इतने रुपइया..
कभऊं एक साथ कोऊ ने देखे हते,
नहीं न, अब खुश हो जाओ...
अपने सुख भरे दिन आ गये समझो,
अम्मा ओ अम्मा! अब मुँह न डारें रहो,
हो गओ, अब थूक दो गुस्सा,
कब लौ रार ठानें रैहो, अपने लरका सें।

सुदामा ने उन रुपयों पर एक दृष्टि भी नहीं डाली, सिन्धु ने भी कोई उत्तर नहीं दिया। गोकरन झुंझलाता सा बोला,

'बैठी रहो रोती,
जब हम अच्छो काम कर हैं तो
अपने आप खुश हो जै हो।
हमें पता है अम्मा
अपने लड़का की तरक्की पे
तुमई गाँव भरे में बतासा बांटती फिर हो।'

सुदामा खीझते हुए बोली,

'बेटा बो तो समय बता है,
लेकिन अभे जो सुन लो कि बाप बनें बाले हो
अब कैसें करत, का करत तुमाई जिम्मेदारी,
हम तो आज मरे कल दूसरो दिन।'

गोकरन के चेहरे पर खुशी दोगुनी हो उठी आज बालक सा कूदता गोकरन माँ से बोला –

'अम्मा! लक्ष्मी आई है, लक्ष्मी,
देखो अपनी खबर के संगे कितनो धन लैके आई।'

सिन्धु कुछ न बोली बस गोकरन को निरखती शान्त जैसे किसी आने वाले तूफान की आहट से सहमी बैठी हो।

गोकरन पूरी बखरी में नाचा फिरता था। सुदामा को सदमा सा लग रहा था, कल तक जिस बेटे को ये पढ़ा–पढ़ा के बड़ा किया था कि ये खेत तुम्हारी जड़ें हैं, माँ है, उस बेटे को अपनी जड़ें बेचने का रत्ती भर भी अफसोस नहीं। इतना मूरख तो न था मेरा बेटा, कितना बुद्धिमान और समझदार था, आज नौकरी करता होता तो खेत दुगने चौगुने कर लेता लेकिन समाज के नियमों ने इसकी बुद्धि को घुन लगा दिया है, शायद जो आज इन मुट्ठी भर रुपयों को लिए नाचा फिरता है।

बेटा! आज खेत के जाएं को दुख नईयां
कल मताई मरें को दुख भी न हो है,

सुदामा दुखी मन से बुदबुदाते हुए छपरे में जाने को उद्धृत हुई। गोकरन ने अम्मा का हाथ पकड़ के बैठा लिया –

अरे अम्मा! कहाँ चली बैठ तो,
ऐसी बातें काए करतीं
आज तो खुशी को दिन है अपने घरे,
सोहर गावे को मौका है, गाओ न,
रामा मथुरा में जन्में कन्हैया
सो गोकुल में बधाए बाजें हों ।
कपिला सी गाय दुहातीं ,
ललन हनवाती ललन हनवाती हो
रामा पीर पीताम्बर पहराउतीं सिंहासन पौंड़ाउतीं हो ।।

पूरे छपरे भर में गोकरन झूमता गाता फिर रहा था। सिन्धु और सुदामा विस्मय भरे नेत्रों से गोकरन को बस एकटक ताके जाती थीं। ऐसा लगता मानो बादल आज आकाश छोड़ भूतल पर सुदामा की बखरी में नाचता फिरता है। भीतर के द्वन्द्व को समझा न पातीं कि धरती जाने का दुख मनायें कि आज वर्षो बाद नाचते झूमते गोकरन को देख विह्वल हो उठें।

अन्ततः पति, पुत्र की प्रसन्नता दोनों नारियों के दुख के बादलों पर हावी हो गयी, लाल नेत्र प्रसन्नता से सुरम्य हो उठे। दोनों स्त्रियाँ

अपना छोर मुँह में दबाए मुस्काती जातीं। अश्रु और सुख का ऐसा अजब संयोजन स्त्रियों की शक्ति के भीतर ही समाहित हो सकता है।

शायद इसीलिये प्रकृति स्त्री है, मृत्ति स्त्री है जो सुखों दुखों का समायोजन कर जीवन का समायोजन किया करती है।

संभवत: जीवन की यही परिभाषा है जो कल के सूनेपन और आज के सुख को एक ही गठरी में बांध एक साथ सुख दुख का उत्सव मनाया करती है ।

॥17॥

धूप छाँव की जाली ओढ़े संध्या आ रही थी। धरा सूर्य के आलिङ्गन से स्वयं को धीरे-धीरे मुक्त करती जाती थी। कुछ ही देर में लालटेन की बत्तियाँ टिमटिमाने लगीं थीं। तिमिर की छाँव प्रायः व्यथाओं को बुनने का समय होता है।

महली के घर महफिल भी आरम्भ हो गई थी, चादरें बिछ गई थी, बोतलें भी सज गई थीं चबेना लिए भिन्ने भी महफिल में आन बैठा, हंसी ठठ्ठे की आवाजें चतुर्दिक् गूंजने लगीं। लेकिन इस सब के बीच खटिया पर पाँव पसारे महली आकाश की ओर चिन्तित, व्याकुल सा ताके जा रहा था, आमतौर पर रात शाम की इस महफिल में महली के हाथ से गिलास और चेहरे से रौब नहीं छूटने पाता था लेकिन आज रंग बदला हुआ था। महली को उसके कारनामों के लिए मनचाहा खेत मिल गया था फिर भी झल्लाया सा था।

तभी एक आवाज ने उसकी तन्द्रा को भंग किया –

अरे पिरधान जी!
आज तो मजे को दिन है मुँह डारें काए बैठे?
अब तो खेत मिल गओ,
जी पे बरसन सें नजर जमाएं बैठे ते।

भिन्ने और गाँव के कुछ लोग चबेना चबाते-चबाते हाथों में रंगीन शराब से भरे गिलास लिए बैठे झूमते व्यंग्य करते पूछ बैठे।

लालटेन की टिमटिमाती लौ को देखते हुए महली ने कहा
देखते हो इस लौ को अभी कांच के भीतर है
सो शान्ति से प्रकाश फैला रही है
सोचो यही लौ सूखी फूस पे रख दी जाए तो?

भिन्ने कूद के बोल पड़ा- *फिर तो भर्र और सब स्वाहा,*

एक ठहाका पूरे वातावरण को कोलाहल से भर गया।

महली ने भिन्ने की तरफ तरेरते हुए कहा –

बिल्कुल सही कहत भिन्ने दादी। कछु ऐसई भओ है।

भिन्ने समझने की चेष्टा करता हुआ बोला – *आखिर ऐसो का भओ हूजूर?*

महली चेहरे पर चिन्ता की लकीरें डालता हुआ बोला –

गोकरन के पास फूस तो पहले से हती
हमने उमे लौ लगा दई
अब सबको जरबो तय समझो भइया।

भिन्ने – *काए पहेली बूझत हजूर साफ–साफ कहो न बात का है?*

बात ऐसी है भिन्ने दादी.....
रक्त जो होता है वह बुद्धि से अधिक बली होता है, क्योंकि बुद्धि तब तक निष्प्राण है जब तक उसमें रक्त का प्रवाह नहीं। गोकरन के रक्त को तो भिन्ने दादी तुमसे अच्छो को जान पा है अब सोचो वो ही खून उसके दिमाग में दौड़ रहो है। स्कूल के दिनां से दिखत चले आ रहे, दिमाग बहुत तेज है। अरे बो छुट्टन जो आज बाबू बनो बैठो की के दम पे, बताओ बताओ!

भिन्ने ने सिर खुजाते पूछा – *की के?*

महली ने फुसफसाते हुए कहा –
गोकरन के कारण, उखें तो अक्षर मिला कें पढ़बो तक न आउत तो... गोकरन ने पढ़ाओ।
बो तो किस्मत कहो या फिर जा राजनीति जो गोकरन पढ़ नई पाओ नई तो हम जैसे पचास अंगाऊं पछाऊं डोलते ऊके। समझे! और बाम्हनन को दिमाग उसई फर्राटा होत।

सब के सब हंस पड़े।

भिन्ने ने फिर सवाल किया – *तो फिर ?*

महली ने चिड़चिड़ाते हुए कहा–

‘अब पैसा गोकरन के हाथ में है,

अब उमें इत्ती ताकत और बुद्धि दोनऊ है कि लक्ष्मी खैं कैसे मनाओ जात और अगर बो सफल हो गओ तो हम औरन की लुटिया डूब गई समझो, जब भिन्ने दादी तुमसें लड़ाई भई ती तब का भाषण दओ तो।

कौनऊ और जात को होतो तो अभे लौ नेता बन गओ होतो, हाथन हाथ लेतीं पार्टी। भिन्ने दादी अब तुम्हें बड़ो काम करने आ है।

भिन्ने ने छाती पीटते हुए कहा –

जो हुकुम करो पिरधान जी, जान हाजिर है।

स्वच्छन्द हंसी तैर गई। आज की राजनीति ऐसा तिमिर है जो प्रकाश के एक कतरे से टकराने से ही भयभीत हो उठती है और उस प्रकाशबिन्दु को छिन्न भिन्न करने में अपने सारे योग, मनोयोग और जितने भी योग संभव हों, सब लगा दिया करती है।

महली ने विचलित होते हुए आदेश पारित किया,

‘हंसबे की बात नईयां भाई लोग, सत्ता खतरे में है, कछु सोचने आ है, हमाये पिता जी तो दिल्ली में बैठे तो काम तो हमें करने पर है भईया हरो, काए है कि नईं?’

यकायक पूरी महफिल में शान्ति छा गई जैसे सब के सब निदान तलाशने में लग गये हों।

सन्नाटा सांय सांय करता बहने लगा, रात भी काफी हो गई थी, सारी महफिल अपने अपने स्थान पर बेहोश पड़ी थी लेकिन महली को आज मदिरा भी न सुला पा रही थी, जैसे जैसे तिमिर प्रकाश की ओर भागता जा रहा था वैसे-वैसे महली की बेचैनी बढ़ती जाती थी ।

रश्मियों ने अपने दुशाले उतार आँखें खोल दी थी, भोर की प्रतीक्षा में गोकरन भी नहीं सोया था। पक्षियों का कोलाहल बढ़ा तो सिन्धु

भी उठ बैठी, आज पहली बार हुआ था जो उससे पहले गोकरन उठ बैठा था।

आज कुछ सूनापन अवश्य था, आज से खेत जो नहीं जाना था लेकिन आने वाले सुख के उत्साह ने गोकरन के भीतर के उस सूनेपन को भर दिया था। स्नान ध्यान अर्घ्य देकर गोकरन आज नीम तले पिता के चबूतरे पर सालों बाद कापी पेन लेके बैठ गया, अपने कारोबार का सारा लेखा जोखा, योजना तैयार करने में लगा था।

सूर्य सिर पर चढ़ आया लेकिन गोकरन की योजना की किताब बन्द न हुई थी, सिन्धु सुदामा बारी बारी से उसे भोजन का आमंत्रण दे चुकी थी लेकिन गोकरन किसी और ही दुनिया में तैर रहा था। स्वयं से संवाद करता, उत्साह से भरता जाता था, आज वो घर-घर जाकर लोगों से बात करेगा, क्या हुआ जो हालात पहले से नहीं हैं, फिर से पहले की तरह बनाए तो जा सकते है, हो सकता है कठिनाईयाँ आएं लेकिन कठिनाईयों से ही सबसे सुदृढ़ राह निकलती है।

अपने पोथी पत्रे बन्द कर गोकरन ने आवाज लगाई –
'अम्मा थोड़ी देर में लौट हैं।'

सुदामा ने बखरी से लड़खड़ाती सी ध्वनि में उत्तर दिया –
'रोटी तो खाएं जाओ, फिर फिरत रहियो।'

'लौट के खा लै हैं' – गोकरन कहता हुआ गाँव की तरफ निकल गया, गाँव वाले आज गोकरन का नया रूप देखकर अचम्भित थे उसके मुखमण्डल पर उत्साह की अनुपम चमक दिखाई पड़ रही थी लेकिन किसी ने कुछ पूछना कहना आवश्यक न समझा, उड़ती-उड़ती खबर सबके कानों में विराजमान थी।

गोकरन सबसे पहले बड्डे महाराज के घर पहुँच गया, *'दद्दा! पालागें।'*

बड्डे महाराज – *खुशी रहो बेटा!,*
सुनी है महली ने लई है जमीन?

गोकरन – *हओ दद्दा!*
पूरे पैसा एक संगे दे रहो तो सो दे दई,
नई तो कोऊ एक संगे पैसा नई दे रहो तो,
तो कोऊ कम पैसा लगा रहो तो।

बड्डे महाराज – *ठीक है गोकरन! लेकिन सम्हल के रहना,*
काए की जे आएं नेता, उसपे महली जैसे,
किसी को प्रसन्न नहीं देख सकत
और गाँव के हालत जानत हो,
सो जो भी करो सोच समझ के देख-भाल के करना।
वैसे सोच का रहे, का करने आगे?

गोकरन ने अपनी योजना का सारा पोथी पत्रा दद्दा के सामने रख दिया। उसकी योजना में बुद्धि की तीक्ष्णता विलक्षणता और उत्कर्ष की सभी सीमायें अपने यथोचित स्थानों पर लिखी गई थीं, किसी को भी प्रभावित करने में सक्षम थी ।

बड्डे महाराज – *योजना तो बहुत अच्छी है बेटा!*
इससे तो दोहरी भलाई हो है,
तुम तो उन्नति करोगे ही साथ में
गाँव की भलाई होगी।
बहुत अच्छे हमारा आशीर्वाद है, राम को
और अपने पिता को नाम लेके करो श्री गणेश!

कृतज्ञता से गोकरन ने दद्दा के पैर छुए और कहा –
पहले गाँव में बात कर लें
सबसे तब पैसा खर्च कर हैं।
आज से बस वही शुरू कर रहे। चल रहे दद्दा!
पाँव छुए और अपने सुखों की कल्पनाएं
संजोए निकल गया।

आठ दिनों से गोकरन भोर से निकल जाता, लोगों से मिलता अपनी योजना का ब्यौरा देता, समझाता –

'देखो हम लोगन को सुनइया कोऊ नईं होत दुनिया में,
हमई लोग एक दूसरे के लाने
चाहें तो कछु कर सकत, चाहें तो मुँह बनाउत
अपने हाथन खैं कांटेन में घिसत बैठे रहें,
इतने साल में सोचो गाँव कितनो बदल गओ है,
का जरूरत हती ऐसें बदलें की,
हम औरन खें संगे यहीं जीने यहीं मरनें तो
काए दुश्मन बनकें जीएं,
प्रेम सें सबको संगे लैके न जीएं।'

एक सुर में आवाज आती...

बात तो सही कहत हो गोकरन भैया पै
इसें खेतन को हरजा न हो है,
औरतें अभे खेतन में काम कर लेती?

गोकरन ने उत्साहित होते हुए कहा –

'कक्का पैसा आ है तो सबरे काम सरल हो जै हैं,
जब सब संगे काम कर हैं तो सब कछु संभव हो है।'

गोकरन की बलवती उम्मीद को ग्रामीणों की हुँकार से और उत्साह मिल रहा था किसान भी उत्साहित दिखाई पड़ते थे। एक बार फिर गाँव साथ में हंसने रोने की ओर सोचने लगा था आखिर ग्रामीण एक सहज प्रवाह होता है उसमें जो भी रंग मिलाया जाये सरलता से मिल जाता है।

किन्तु रवि की प्रखरता जैसे–जैसे तीव्र होती है मनुष्य अंधा हो जाया करता है। महली गाँव के बदलते स्वरूप को पहले ही भांप चुका था, अब उसकी आशंकायें मूर्त रूप ले चलीं थीं। आज की राजनीति सौहार्द के रथ पर सवार हो कभी विजयश्री को साकार नहीं कर पाती। भिन्ने आए दिन गोकरन से उलझने का प्रयास करता किन्तु इस बार गोकरन अपने उत्साह को क्रोध और बैर की अग्नि में जलाने से बचाना चाहता था, अतः अपने चित्त को उसकी ओर जाने से रोके रखता किन्तु

जब असंख्य चिंगारियाँ छिटकतीं हैं तो एक न एक पुँज अग्नि का जन्मदाता बन ही जाया करता है।

'काए गोकरन पण्डित जी!
अब लुगाईयन के संगे काम कर हो,
अब जै दिना आ गए।
बाप तुमाए काए पोथी पत्रा संगे लै गए का?
बे तो बड़े धर्मात्मा बने फिरत ते और सपूत खें देखो
अब धूरा फांकत गिगयात फिरत'

एक कुटिल हंसी के साथ भिन्ने ने तंज कसते हुए कहा।

गोकरन ने भिन्ने को चेताते हुए उत्तर दिया,

देखो कक्का! हम तुमसें नई बोलत
तुम हमसें न बोलो।
अपनो काम करो और आगे बढ़ गया।

लेकिन भिन्ने तो आज फिर किसी षड्यन्त्र की पोटली खोलने आया था –'अरे ओ बम्हना!

पीछे से गोकरन को चेतावनी सा देता चिल्लाया,

अब तुम्हें अपनी टांग तरें हम दबा हैं,
दिखत कैसें काम सुरू करत, आगी लगा दै हों।'

गोकरन ने जो सारे बन्ध अपने ऊपर लगाए थे टूट गये गोकरन ने भिन्ने का गला पकड़ लिया, रास्ते से गुजरते ग्रामीणों ने गोकरन और भिन्ने को उलझा देखा तो दौड़कर दोनों को एक दूसरे से अलग किया,

'अरे का करत गोकरन, उमर तो देख
और ऐसें आए गाँव को भलो कर हो,
जो तो है पियक्कड़
ई की बातन में तन-तन में तेहा खै हो
तो कैसें काम कर हो?'

लेखनीराम ने गोकरन से कहा। गोकरन अपनी नेत्रों से अग्नि

फेंकता हुआ वहाँ से निकल गया। इधर सुदामा की सेहत और गिरती जाती थी, आज तो बुखार उतारे नहीं उतर रहा था, देह नौतपा के सूर्य सी धधक रही थी, हल्केराम के जाने के बाद से सेहत वैसे ही गिर गयी थी उस पर जबसे जमीन बिकने की बात चली तबसे तो जैसे रोग घर बना के ही बैठ गया।

सिन्धु तीन घण्टे से पानी की पट्टी रख रही थी, डाक्टर, वैद्य दोनों की दवाईयां खिलाई लेकिन ताप उतरने का नाम ही लेता था, उस पर खांसी भी आने लगी।

दोपहर से सन्ध्या हो गई गोकरन का कोई पता न था कितनी बार आते जाते लोगों से संदेशा भेज चुकी थी, अन्ततः अम्मा को सुला के सिन्धु खुद ही उसको ढूंढने निकल पड़ी, गोधूलि बेला हो चली थी क्रोध से लाल देह लिए हुए गोकरन लम्बे-लम्बे डग धरता हुआ मार्ग में ही मिल गया।

अरे कहाँ चली जा रही ? गोकरन ने तीव्र स्वर में कहा

अम्मा की देह बुखार से तप रही,
कितनी बार बुलऊवा भेजे
लेकिन तुम तो जाने कहाँ बिलम रहे थे। चिन्ता और क्रोध के मिश्रित स्वर में सिन्धु ने कहा।

अपने भीतर के क्रोध कम्पन को सहज करते हुए गोकरन ने सिन्धु से कहा –

अरे! काम शुरू करने तो सबसे बात करें में लगे ते
और इन दिनन कोऊ घरे तो रहत नईयां
सो खेतन तक चले गये ते।
चलो पहले अम्मा खें देखें?

सुदामा का कम्बल हटाया तो पसीने से तर माथे पर से बुखार उतर गया था। सिन्धु ने भगवान के हाथ जोड़े और दियाबत्ती कर चूल्हा सुलगाने में लग गई। गोकरन लाड़ और क्षोभ लिए अम्मा से लिपट गया–

अम्मा का हो गओ,
ऐसी काए बीमार परीं हौ उठो चलो,
अब ज्यादा न सोचो करो
अब सब अच्छो ही अच्छो हो है।

सुदामा ने हाथ झटकते हुए रूखे स्वर में कहा,

भग उठन दो, हमें ताप चढ़ी तो दूर रहो हमसें,
तुम्हें न लग जाए।
दिया बत्ती की बेरा है उठन दो।

एक तो बीमारी ऊपर से जिस दिन से गोकरन ने जमीन बेचने की बात की थी सुदामा कम ही बोलती थी, चाहकर भी अपनी जड़ों के प्रति मोह न त्याग पा रही थी, आँख बचाकर प्रायः पड़े-पड़े रोती रहती थी। गोकरन ने स्नेह भरे हाथों से अम्मा के हाथ पकड़ के कहा-

अम्मा का भओ जमीन गई,
नई जमीन खरीद हैं, नई जड़ें रोप हैं,
सब कुछ अच्छो हो है विश्वास तो करो।

अश्रुमुखी सुदामा ने बस इतना कहा,

'बेटा! अब चाहे जितनी जड़ें रोप लो,
पुरखन की जरें तो कट गईं'

छोर को मुँह मे रगड़ते थरथराते कदमों से उठकर अपने भीतर के संसार की देहरी पे बैठ बाहरी संसार को ताकने लगी।

जीवन के परीक्षाओं से आहत गोकरन अब डरता था, जाने कौन सा दुख किस वातायन से आ जाए, अतः अम्मा के पास से उठके हाथ मुँह पर जल के छींटे डाल भगवान के सम्मुख हाथ जोड़ आँखें मूंद बैठ गया जैसे आज की गलती का पश्चाताप कर रहा हो, किन्तु आज के युग में षड्यन्त्रों की विजय सहज हो जाती है।

अभी रात तिमिर चढ़ी आई ही थी, घरों ने तम के अपशकुन को बाहर ही रोकने के लिए किवारे लगा लिये थे कि तभी गोकरन के दरवाजे पर एक तेज दस्तक ने पूरे घर को चौंका दिया।

कांधे पर गमछा धरे गोकरन ने जैसे ही दरवाजा खोला खाकी वर्दीधारी ने गर्दन पर जोर का हाथ धरा और कहा –

पण्डित जी बड़ी रंगबाजी चढ़ी है, चलो सब उतारें।

गालियों की तेज आवाज सुनके सिन्धु, सुदामा भी बाहर आ गई। गोकरन विचलित होते हुए कहा–

'अरे दरोगा साहब! हमने का करो बताओ तो?

दरोगा ने गमछे को झटकते हुए कहा –
विस्तृत तो हम जेल में बताएंगे
अभी तो बस इतना सुन लो
तुमने दलित पर हाथ उठाया है,
उसको असम्मानसूचक शब्द कहे हैं।

सुदामा ने हांफते से सुर में कहा – *'कीनें कही दरोगा साहब,*
हमाओ लरका तो कोऊ सें बोलत लौ नईयां।'

दरोगा – *अरे डुकरिया! गाँव भर गवाह है*
और तो और इनके सब कारनामे बताए हैं भिन्ने ने।

घूंघट के भीतर सिन्धु ने कहा –
जे ऐसो करई नईं सकत भिन्ने तो
पहले सें हमाए पछाऊं परो रहत
लेकिन हमने कभऊं कछु नईं कही,
छोड़ दो दरोगा साब।'

गोकरन भी अपनी व्यथा बताता रहा लेकिन दरोगा ने एक न सुनी, गालियों की बरसात करता गोकरन को घसीटते हुए ले गया। मान पर ऐसा आघात कभी न हुआ था, जिस घर की देहरी को छूकर अभाव भी आल्हादित हो मानी हो जाया करता था, आज उसी घर की देहरी पर अपमान ने कैसा प्रहार किया था।

सुदामा धड़ाम से धरती पर अचेत हो गई। सिन्धु ने सुदामा को सम्हालते हुए बगल में लिटाया। घण्टे भर बाद सुदामा को होश आया

दोनों स्त्रियां पूरी रात सबेरे की प्रतीक्षा में अपनी सूती धोती के छोर से इसे घने आवरण को हटाने का प्रयास करती रहीं।

भोर की पहली किरन दिखते ही सुदामा अपने लड़खड़ाते कदमों को लिए बड्डे दादा के घर चल दी, पूरे गाँव में गोकरन की गिरफ्तारी की खबर आग की तरह फैल गई थी।

राह में सुदामा को जो भी मिला उसने सुदामा पर प्रश्नों के तीर चलाए–

का हो गओ कक्की, का कर दओ गोकरन ने?

सुदामा अपने अश्रु भरे नेत्रों से घूरती और फिर बढ़ जाती, बड्डे दादा के घर पहुंचकर उनके चरण स्पर्श कर सुदामा बिलख पड़ी–

दादा बचा ल्यो लरका खैं पुलिस लै गई,
रात भरे सें जेहल में है।

बड्डे महाराज – *अरे उठ बहू! पता चलो हमें, हम अभे तुमाए पासई आ रहे ते।* सुदामा बिलखती घूंघट काढ़े बैठ गई।

देखो बेटा! हमाई भी इत्तनी जान पहचान नईयां कि कोऊ हमाई सुन ले,
हमाई मानो तो चलो प्रधान के पास, सुबीते सिंह सांसद है तो उकी तो सुन है पुलिस।

सुदामा ने रुंधे कण्ठ से कहा, *'जो कहो करें खें तैयार हैं,*
मैं मरें खें बैठी बहू पेट सें है,
कोऊ नईयां हमाएं दिखइया,
लरका खैं चाएं जैसे छुड़ा दो बस।

बड्डे दादा ने बंडी डाली और महली की कोठी की ओर दिए, पीछे-पीछे सुदामा भी चल दी।

महली मुँह में दातून दबाए टहल रहा था, दूर से ही सुदामा और बड्डे महाराज को आता देख मन में बुदबुदाया –

'आओ आओ, आज ही की प्रतीक्षा थी।'

दोनों को पास आते देख विस्मय का मंचन करता हुआ बोला–
'आओ बड्डे महाराज पालागें,
इतने भुनसारे सें हमाई गैल कैसें भूल गए।
अरे सुदामा कक्की तुमऊ आई पालागें।'

बड्डे महाराज ने व्यग्रता से कहा, *'महली! गोकरन की तो सुनी हो है खबर।'*

महली – *हओ महाराज! सुनी तो है।*

बड्डे महाराज – *उखैं छुड़ाबो जरूरी है,*
घर को एकई करता धरता बहू पेट से हैं,
मताई बीमार धरी
और हालत तो तुमसे लुकी छिपी है नईयां।

महली – महाराज! बो सब तो ठीक है,
पै आजकल सरकार ने कानून बड़े सखत कर दए हैं
और गोकरन खैं तो दलित एक्ट में उठाओ है,
ई मामले में पुलिस कोऊ की नई सुनत,
और गोकरन के खिलाफ मैनें सुनो है कि
गाँव में कुल जने गवाही दे रहे,
ऐसे में पांच साल तक की जेल हो सकत!

सुदामा घबरा के बिलख पड़ी, *हाथ जोड़ती बोली*
बचा लो महली नई तो मर जै हैं,
बचा लो हमाए लरका खें।

महली ने दाढ़ी खुजाते हुए कहा –
देखो कक्की अब एफआईआर तो दर्ज हो गई
सो कछु हो नई सकत, बस इत्तो हो सकत कि
भिन्ने सें तुम समझौता कर लो
जो पैसा रूपइया मांगे दे दो बो केस वापस कर लै है।
येई हो सकत नई तो मुकदमा लड़ो
उमें सालन लग जात,

जमानत मिलत नईं मिलत को जानें?
कुल मिला खैं मुसकिल है ई मामले में।

सुदामा और बड्डे महाराज सुनते रहे, अब समझ न आता था क्या करे? तभी महली बोला –

हम जब तक सपर खैं आऊत, सोच लो
अगर चाहो तो भिन्ने खैं इतईं बुला खैं
अभईं सब रफा दफा करवाएं देत।

इतना कहकर महली उठकर भीतर चला गया। बड्डे महाराज ने रुंधे गले से कहा –

बहू देखो बात तो महली ने सही कही,
कोरट कचहरी करें के लाने तुमाए पास को धरो,
न हमाई इत्ती शक्ति आए और न तुम्हाई,
अगर मामला ऐसें हल भओ जात तो अच्छो है,
समस्या एकई है पैसा।

सुदामा आंसू पोंछते हुए बोली –

सही कहत दादा ऐसई करें लेत, रही पैसा की बात
तो खेत बेंचे की रकम धरी, सो ओई सें काम कर लै हैं,
लरका सें बड़ी थोड़ी है रकम।

महली भीतर से आ गया – *तो का सोचो कक्की ?*

सुदामा – *हओ भैया! बुला ल्यो भिन्ने खें।*

महली ने तुरन्त भिन्ने को बुलऊवा भेज दिया। भिन्ने भी फौरन भागता दौड़ता पहुँच गया जैसे इसी समय के लिए सजा बैठा हो। महली ने दूर से ही भिन्ने को देखकर कहा,

'आओ भिन्ने दादी देखो तो सुदामा कक्की का कहतीं।'

भिन्ने तिरछे नेत्रों से देखते हुए कहा –

'का कहतीं काए, गोकरन ने हमाए संगे जो कछु करो
सो बो तो होनई हतो, मैं पाछें हटें बालो नईयां।'

सुदामा ने कहा – *'भिन्ने गाँव गली की बातें आएं*
बैठ खैं निपट सुरझ लै हैं शान्ति सें
थाना तहसीली करकें काए खें बात बिगारत।'

भौजी! जो तो न हो पा है? भिन्ने ने ऐंठते हुए कहा

बड्डे महाराज ने भी समझाया लेकिन भिन्ने अपनी बात से टस से मस होने को तैयार न होता था, सुदामा की उम्मीद जैसे जैसे हारती जाती वैसे वैसे उसकी सांसें उखड़ रही थी। हांफती सुदामा बार-बार अनुनय करती उसकी अम्मा का वास्ता देती लेकिन भिन्ने अब गालियों पर उतर आया –

हट् ससुर ने मोए ऊपर हाथ उठाओ
आओ बड़ो लाट्साब, सबरी साहबी निकार खैं
धर दै हों चाएं ब्रह्मा उतर आएं
लेकिन केस सें न फिर हों।'

अब स्वांग के अन्तिम अंक का समय आ गया था, महली ने अपने मुख भंगिमाओं को भिन्ने की ओर मोड़ते हुए कहा,

'हो गओ भिन्ने दादी! गाँवदारी की बात है,
सबखैं रहने तो इतई हैं लड़े भिड़े सें का होत,
कक्की की हालत तो देखो, जो हो गओ सो हो गओ
तुम्हें जितने पैसा लेनें लै लो और केस वापिस ल्यो।

भिन्ने कुछ देर आनाकानी करता रहा फिर चुप्पी साध कुछ देर बैठा रहा, तब तक लिखनी भी पहुँच गई, लिखनी ने राम-राम करके भिन्ने से कहा –

लै ले केस बापिस,
महाराज ने तुमाई मताई की जान बचाएं के लानें
एक बार नईं सोचो तो, हमेसा मदिद खैं आंगे रहत ते
और आज तैं ऐसो ऐंठो फिरत।'

भिन्ने गुर्राता हुआ सा बोला –

'बाई तुम दूर रहो हमाए मामले सें।

भिन्ने ने महली की ओर मुखरित होकर आँखें मटकाते हुए कहा–

'ठीक है! प्रधानजी!
जो तुम कहत तो ठीक है मानें लेत,
पै हम साठ हजार रुपइया लैबी,
न एक कम न एक ज्यादा, अब सोच ल्यो?

महली ने उत्तर अपेक्षित नेत्रों से सुदामा की ओर देखा, सुदामा ने फौरन हाँ कर दी। अंततः षड्यंत्र ने अपनी चाल पर विजय पाई। महली ने तम्बाखू रगड़ते हुए कहा –

ठीक है फिर बात तय रही,
कक्की घरे चलो हम औरें आऊत हैं उतई,
सो हिसाब हो जै है
कछु रुपइया पुलिस वालन खैं भरने आ है
सो पंद्रा हजार तक बे मान लो
कुल हो गए पचहत्तर हजार।

सुदामा ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी और लाठी टेंकते धीरे–धीरे करम की कालिख को कोसते हुए घर की ओर चल दी, बड्डे महाराज भी निकल गये।

इधर भिन्ने और महली ने एक विजयी कुटिल मुस्कान के साथ एक दूसरे की विजय का गौरव गान किया। सियासत की काली स्याही ने फिर एक ऐसा पांसा फेंका जिसमें कुटिलता के समक्ष मानवता नतमस्तक खड़ी हो गई।

।।18।।

गोकरन जेल से छूट तो आया परन्तु एक भय, घृणा और पश्चाताप का महल उसके चतुर्दिक् तैरता रहता था। जो गोकरन अपने स्वप्नों में उड़कर एक स्वर्णिम भविष्य की कल्पना में सारा बैर वैमनस्यता सब कुछ भूल चुका था।

आज वही गोकरन घृणा का उमड़ता सागर लिए अपनी आशाओं आकांक्षाओं के ध्वस्त महल में मुँह औंधाए पड़ा रहता। न कहीं जाता, न काम करता बस पड़ा रहता। सिन्धु और अम्मा भी अब उससे कुछ कहते हुए डरा करती थी। छोटी-छोटी बातों पर चिड़चिड़ा बैठता।

जबसे जेल से लौटा था पश्चाताप की अग्नि में खुद को जलाए डाल रहा था, स्वयं को माता पिता के आदर्शों पर बनी इस फूस की छत का अपराधी समझता था। बार-बार स्वयं के निर्णय को धिक्कारता रहता। घर की माटी की दीवारें जैसे उसे कचोट रही हों इसलिए आँखें खोलने से भी डरता था।

चार महीने गुजर गये गोकरन ने काम करने के लिए हाथ भी न हिलाया था, उसकी रिहाई के बाद बचा धन भी अब अन्तिम सांसे ले रहा था।

सिन्धु का प्रसवकाल भी कुछ महीने दूर था, सुदामा की स्थिति और भी गम्भीर हो गई थी। काया सूख के हड्डियों से जा चिपक चुकी थी। गोकरन का मुख देख-देख और बिलखती रहती। सन्तान की पीड़ा माता पिता के लिए किसी घुन की ही तरह होती है, इस दुख के समक्ष माता पर कोई वैद्य कोई ओझा कुछ भी असर नहीं करता।

अब तो डॉक्टर की दवाइयों ने भी परिणाम देना करना बन्द कर दिया था, कितने बार कस्बे के अस्पताल का इलाज करा चुके लेकिन सब बेअसर। चिन्ता से व्यथित सिन्धु ने आज सुदामा का हाथ पकड़कर कहा -

'अम्मा! तुमई समझा सकतीं,
हम तो कछु बोलत तो चिड़चिड़ा खैं परत,
कैसें चल है? जो कछु धरो तो सो खा कें बैठ गये।'

सिन्धु की सिसकियों ने सुदामा के तन मन को झकझोर कर रख दिया। जीवन में बड़े बुरे दिन देखे लेकिन ऐसा समय कभी नहीं देखा था। हंसती खिलखिलाती उसकी सन्तान को ये कौन सी व्याधि दे दी? कौन है इस पीड़ा का उत्तरदायी दुर्भाग्य? या फिर ये वितण्ड समाज? एक मेधा को जला डाला, इसका पाप किसके सिर होगा, विधाता के या फिर इन सामाजिक ठेकेदारों के? नहीं पता! इस दोष के लिए किसको सजा होगी, ये भी ज्ञात नहीं? परिवार के एक मनुष्य की व्यथा पूरे कुटुम्ब को खा जाया करती है। अब बचा क्या है? इस कुटुम्ब के पास चंद अपमान, तिरस्कार की कहानियाँ या फिर इस छपरे में तैरते हल्केराम और सुदामा के आदर्श।

आज सुदामा अपनी आत्मा नोंचे डाल रही थी, विपदाओं का ऐसा अम्बार सामने है और ये कौन-कौन सी व्यथायें दिखा रहे हो ईश्वर! अब क्या कोई प्रार्थना तुम तक नहीं पहुँचती, सामाजिकता से विमुख होते समाज की भांति अब उसके दरबार में भी कोई सुनवाई नहीं होती। सुदामा की व्यग्रता बढ़ती जा रही थी एक बेचैनी सी उसकी देह में दौड़ने लगी थी।

सुदामा ने गोकरन को हाथ के इशारे से बुलाया, गुमसुम बैठा गोकरन अम्मा की खाट के पास धरती में मुँह गड़ाये बैठ गया। अपने थरथराते जीवन के कटाव धारण किये हाथों से सुदामा ने महीनों बाद गोकरन के माथे पर हाथ फेरा था, हाँफते स्वर और लरजते होठों से कुछ शब्द कहने का प्रयास कर रही थी,

बेटा! हमाए पास बैठतई नईयां तुम तो?

गोकरन ने अम्मा का हाथ पकड़ते हुए कहा -

का बात है अम्मा! तबियत ज्यादा खराब लग रही का?

अपने हाथ से इंकार का इशारा करते हुए सुदामा ने अपने फेफड़ों में श्वास को संचित कर मुँह में कुछ शब्द उतारे, थरथराती जिह्वा से सिन्धु की ओर इशारा करते हुए कहा –

'बेटा! अब हमाओ नईं ई औरत को मुँह देखो।
जबसें आई कछु नईं मिलो,
अब ई के जी सें एक और जी लगो उकी सोचो।
तुमाए बाबू ने कभऊं हिम्मत नईं हारी चाएं
जैसी विपद परी हो और तुम अभे सें हार गए।
हमाई सन्तान होकें, ऐसें रहत, जैसें पाप करो होबे।
का घुटत रहत भीतर? जो बीत गई निकार फेंको।
तुम ऐसें रै हो तो, हमाओ जाबो कठिन हो जै है।
एक बात और बेटा!
अब ई बखरी पे कभऊं आंच न आउन दइयो,

कहते कहते सुदामा जोर से खांसने लगी, संचित श्वासों का खजाना खाली हो चला। आँखों से अपनी सन्तान के लिए शब्द, आशीष और अपनी असफलताओं को बहाती रही। अपनी आत्मा के माथे पर हाथ फेरते फेरते क्षितिज पर एक लालिमा भरी गर्जना हो उठी।

गोकरन के भीतर एक बिजली सी कौंध गई, विह्वल सा गोकरन अम्मा की छाती से चिपक गया जैसे वर्षों की पीड़ा पर माँ ने मरहम लगाया हो, गोकरन घण्टों माँ की छाती से चिपका बालक सा बिलखता रहा, बस आज एक ही वाक्य निकलता था –

अम्मा हमें क्षमा कर दो!

बार–बार सिसकियां शब्दों को गिरफ्तार कर लेतीं लेकिन गोकरन के मुख से अम्मा शब्द को आन्दोलित होने से न रोकने पाती थीं। उसकी पीड़ा पिघलकर अम्मा की ठण्डी होती छाती पर बह रही थी। सुदामा की आँखों से आंसू झरना बन्द हो गये, धड़कन भी अब सुनाई न देती थी, देह शीतल हो चली, बच्चे के माथे पर लहराता अम्मा का ममतामयी हाथ भी स्थिर हो ढुलक कर गिर गया था। मेघ तड़ित

भी शान्त हो गये। गोकरन को जब तक एहसास हुआ, अपने मातृत्व का अन्तिम कर्त्तव्य निर्वाह करके सुदामा नक्षत्र मण्डल में स्थापित होने की यात्रा पर निकल गई थी।

गोकरन के कण्ठ से अन्तिम बार *'अम्मा'* का करुण क्रन्दन पूरे छपरे को आन्दोलित कर गया। आकाश के गड़गड़ाते रथ पर अम्मा चली गई! हठ, ममता, आशीष, शक्ति, लाड़ सबकुछ अम्मा के साथ मर गया। आज गोकरन की आसरे की छत का अन्तिम अम्बर भी उसे अकेला कर उड़ चला। गोकरन छटपटाता रहा अम्मा को झकझोर-झकझोर चिल्लाता रहा -

अम्मा उठो कहाँ गई तुम?
पूरी दुनिया से अवहेलना, अपमान, असफलताएं पाकर
तुम्हारे आँचल में उड़ेल दिया करता था,
अब अपनी वेदनाओं की गठरी कहाँ खाली करूंगा?
अम्मा! तुम ही तो थी जो सामाजिक अस्त्रों से
छलनी मेरी छाती की वेदना को
अपने ममता भरे नेत्रों से वज्र का बना दिया करती थीं
जिनके सहारे सारे जमाने के
असह्य दुरूह वारों को झेल जाया करता था,
अब कोई नहीं जिसके खुलते नेत्र मुझे वज्र का बना सकें,
आखिर वो शक्ति कैसे बुझा सकती हो अम्मा!
हमें छोड़ के कैसे जा सकती हो अम्मा! लौट आओ...
अब सब कुछ सुनूंगा,तुम्हारी हर बात मानूंगा
लौट आओ अम्मा! बस एक बार आ जाओ!

कहते कहते गोकरन अम्मा की शीतल छाती पर अचेत हो गया। माँऐं जब मरती हैं, तब बचपन भी मर जाया करते हैं गोकरन माँ की जाती सांसों के साथ उम्र के कई पड़ाव एक साथ पारकर, यकायक बड़ा हो गया था। इस शाम फिर एक जीवन गुजर गया था।

॥19॥

'बाबू उठो रोटी खा लो,
देखो आज अम्मा ने रोटी बनाई है,
बाबू उठो! बाबू उठो!

मुनिया और श्रवण बाबू को हिलाए जा रहे थे, सिन्धु ने भी चूल्हे से बैठे-बैठे आवाज लगाई,

अरे उठो इत्ती बेरा तो कभऊं नईं सोऊत,
बच्चा कबसें जगा रए उठत काए नईयां।

डरा सा गोकरन चौंककर खटिया पर उठ बैठा। अपने चारों ओर देखा तो पाया समय तो कबका पंख लगा के उड़ चुका है। ये तो आज है जिसको चलाने की उसे जुगत लगानी है।

सहसा लिखनी की अनुनय ध्वनि उसके कर्णपरदों पर फिर तैरने लगी। सिन्धु ने दोबारा आवाज लगाई -

फिर बैठ गये, रोटी खा लो टाठी परस दई।

गोकरन उठके हाथ मुँह धोके पाटे पर बैठ गया, अन्न का जैसे ही पहला कौर मुँह में गया ही था कि सिजिया बाहर से चिल्लाती हुई किवाड़ों के पास घूंघट डाले खड़ी हो गई,

पुरोहेतिन जिजी! सुनी कछु
ऊ भिन्ने कक्का की मताई कैसी रोऊत फिरत।

सिन्धु चूल्हे से उठ के सिजिया के पास आ खड़ी हुई, *'काए का हो गओ?'* विस्मित से स्वर में पूछा।

सिजिया मुँह बिचकाते हुए - *अरे जिजी! कीरा पर गये, उखें अब कौनऊ हेरत तक नईयां, बसात है बुरो।*

मताई हाथ जोरत फिरत कोऊ अस्पताल पहुँचा दो लेकिन कौनऊ पास तक नईं फटकत।

सिन्धु ने चिढ़ते हुए हुए कहा –

'इतई न्याय कर देत ईसुर, मरत रहे ठठरी बंधो!
हमाओ तो सबरो बरबाद ओई को करो आय।'

किन्तु फिर भी मनुष्य की आत्मा चाहे वह घृणा का रूप हो व्यंग्य का किसी न किसी रूप मे प्रश्न कर ही लिया करती है, ये बात और है कि उस प्रश्न को मनुष्य सुने या अनसुना कर दे। सिन्धु ने उत्तरअपेक्षित हो पूछा–

'काए अब उको सगो बो महली कहाँ गओ?
और बे सुबीते कक्का कहाँ गये?
जिनके दम पे पूरे गाँव में गरजत फिरत तो।'

सिजिया ने फुसफुसाते हुए कहा –

'दिख तो डुकरिया रोज घण्टन कोठी के दोरे पे बैठी रहत
निगाह तक नई डारत पूंछबो तो दूर, हटकारत अलग देत,
जो तुमाए संगे रहो तुमाए भले बुरए सबरे करमन को
साथी रहो उकी मदिद न करो चइये का? येई होत।'

गोकरन भीतर अन्न के टुकड़े मुँह में डालता हुआ दोनों स्त्रियों का ये संवाद सुन रहा था, जबसे लिखनी कक्की को उसने सहायता देने से इनकार किया था तबसे एक द्वन्द्व उसके भीतर बढ़ा चला आता था। इस द्वन्द्व से भागने का लाख प्रयास कर रहा था लेकिन सर्वथा व्यर्थ। उस पर स्त्रियों के संवाद ने उसके भीतर के युद्ध को और तीव्र कर दिया थाली को सरका के गोकरन बिना कुछ कहे सिन्धु को लांघते हुए निकल गया। सिन्धु ने पीछे से आवाज दी–

कहाँ जात हो थरिया छोड़ खैं? रोटी तो खा लो।

सिजिया ने कहा – *पहले सोचत ते दिख आएं पै हमाए दद्दा ने मना कर दई।*

सिन्धु ने मुँह बिचकाते हुए कहा –*'काए का जानें ऐसे राक्षस खें देखन।*

जा गत तो होनई हती, अब समझ आ गओ हो है
बड़े नेतन के संगे लगो रहत तो,
येई कहाऊत नेता, अब गाँव भर बैर परो है,
इतई डरो डरो सड़ जै है, कोऊ हिरक है सोऊ न,
लुगाई लरका लौ छोड़ भगे
और की तो भली चलाई।'

तभी श्रवन की भीतर से जोर की आवाज आई

अम्मा ओ अम्मा! जिज्जी ने फिर टट्टी कर दई।

सिन्धु चिल्लाते हुए दौड़ी –

काए री बता नई पाऊत का
इत्ती बड़ी हो गई चौबारां आए कपड़न में छोड़ी,
कितनी बार सपरों।'

दस्त पर राख छिड़ककर मुनिया को खींचते हुए बखरी तरफ ले गई। मुनिया लथराती सी आवाज में बोली,

'अम्मा पता नई चलो कभे हो गई।'

इस बार मुनिया का दस्त और पतला हो गया था कुछ खून भी आया था। ऊपर से उसने पूरी चार रोटियां और पेट में डाल ली थीं। चिन्तित सी सिन्धु बोली रोटी न खाने ती लगत और नुकसान कर गई। मन से संवाद करती जाती घर में एकऊ पैसा नईयां डाक्टर खैं कैसें लै जाएं, का करें कछु समझ नई आ रहो, मोड़ी पीरी परत जात।

सिन्धु ने जल्दी से बेल घोर के मुनिया के हाथ में गिलास थमा दिया ले बेटा पी ले दवाई आए। चूल्हा समेटती जाती और सिजिया से किये संवाद पर स्वयं को परखती जाती, हमें किस पाप का फल मिल रहा है, हमने तो किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा, शायद माता पिता की अवज्ञा की अगर उनकी सुनी होती तो .....

इधर गोकरन स्वयं से लड़ता शाला बाबा के उसी चबूतरे पर आ बैठा जहाँ तिरस्कार की ज्वाला ने उसके पिता को भस्म कर दिया

था। पिता की मृत्यु के बाद से गोकरन इस ओर कभी-कभी ही आया करता था । शाला बाबा के इस चबूतरे पर एक ओर पिता का अपमान तैर रहा था तो दूसरी ओर लिखनी कक्की का ढलता जीवन और पिघलता चेहरा बारम्बार मानसिक नेत्रों के सम्मुख घूम रहा था। द्वन्द्व करती आत्मा और मस्तिष्क के प्रश्नों का गोकरन मूल्यांकन और हृदयांकन कर ही रहा था कि उसका मस्तिष्क एवं उसकी आत्मा की रेख मानवी रूप धारण कर उससे संवाद करने लगी।

गोकरन बार-बार प्रश्न करता क्या मुझे उस मानव की सहायता करनी चाहिए जो मेरे प्रत्येक कार्य में मेरे सम्मुख रावण बन खड़ा रहा हो?

मस्तिष्क से उत्तर आता नहीं.. नहीं.... कतई नहीं जाना चाहिए, वो तुम्हारे समस्त सुखों का विनाशक है, तुम कभी नहीं जा सकते।

किन्तु आत्मा से अन्तर्ध्वनि आती है, 'क्या तुम्हारे भीतर की मानवता पिता के साथ ही तिरोहित हो गई? क्या उनके वे संस्कार ओछे पड़ गये जिन्हें तुम्हारे जीवन की प्रथम श्वास से अपने अन्तिम समय तक तुम्हारे पिता ने तुम्हारे कांधे पर धरा था।

गोकरन विस्मित रक्तवर्णी मुख से चीखता हुआ सा बोला, 'हाँ मैने कर दिये तिरोहित,

मैं नहीं समझता ऐसे मानवों के लिए कोई मानवता हो सकती है।

उत्तर दो मेरा कौन सा दोष था, मेरा कौन सा पाप था जो मेरी मेधा का मर्दन कर दिया गया?

मैं तो किसी इतिहास का हिस्सा नहीं था, मैनें किसी से कलम का अधिकार नहीं छीना था फिर मेरे हाथों से कलम क्यों छीनी गई?

इतिहास ने जिन्हें पीड़ा दी वे इतिहास के लोग थे और इतिहास की त्रुटियों की गठरी वर्तमान पर कैसे धरी जा

सकती है?
यदि उनके साथ अन्याय हुआ तो क्या आज मेरी मेधा के साथ न्याय हुआ है? बताओ मुझे ?

लेकिन आत्मा ने तर्क करते हुए कहा -
तो तुम क्या कर रहे हो? तुम भी तो भूतकाल के दोषों को अपनी छाती पर लिए घूम रहे हो।
जो तिरस्कार पीड़ा संताप उसने तुम्हे दिया, क्या उसका उसे फल नहीं मिल रहा? जिसके विचारों के द्वारा वो हांका जा रहा था वो भी इस लोभ में कि उसके जीवन का उत्कर्ष हो जाएगा, वो तो आज भी रेशम के झूलों पर झूलते हैं किन्तु ऐसी सजा तो उसे मिल ही रही है कि आज उसके पास कोई खड़ा तक होने को तैयार नहीं।
यदि उसने तुम्हारे साथ अन्याय किया तो तुम भी उसके साथ वही कर रहे हो, यदि तुम्हारी दृष्टि में यही उचित है तो इस समाज ने इस शासन ने सभी ने अन्याय किये हैं तुम्हारे साथ फिर तुम इस समाज को छोड़ के क्यों नहीं जाते?
किसी के साथ अन्याय का बदला अन्याय नहीं हो सकता इसलिए तुम्हें जाना चाहिए।

प्रश्नों की गठरी से फिर कुछ प्रश्न निकालकर मस्तिष्क ने आत्मा के सम्मुख उछाल दिए -

ठीक है मानता हूँ मुझे जाना चाहिए परन्तु मेरे प्रश्नों का उत्तर यदि दे सको तो मैं अवश्य जाऊंगा,
क्या इतिहास के दोषों के लिए वर्तमान को फांसी दी जानी उचित है? क्या ये न्याय है?
अंतर्मन - *नहीं कतई उचित नहीं इतिहास तो सीखने के लिए लिखे जाते हैं प्रतिशोध के लिए नहीं।*
किन्तु इसमें किसी एक का नहीं हम सबका दोष है, हमने इतिहास के सुरों को सुनना ही बन्द कर दिया है,

हमने उससे वही उठाया जो विखंडन करे, वरना इतिहास ने किसी के साथ कोई पक्षपात नहीं किया।
उसने पीड़ित सूतपुत्र कर्ण को स्थान दिया है तो दूध के लिए भूख से तड़पते आचार्य द्रोणाचार्य की सन्तान अश्वत्थामा और अन्न के लिए तिल-तिल कर मरते सुदामा को भी स्थान दिया किन्तु इसलिए नहीं कि भविष्य इनके नाम पर नए कर्ण और सुदामा उत्पन्न करे बल्कि इसलिए कि इस समाज में कोई न कर्ण सा शोषित हो न सुदामा सा पीड़ित।
परन्तु दुर्भाग्य है कि आज फिर वही इतिहास लिखा जा रहा है, अब भविष्य के लिए नया घोष गढ़ने की तैयारी चल रही है।
ये चक्र ऐसे ही चलते रहेंगे जब तक वैचारिक आतंकवाद, बुद्धिवाद इसे चलाता रहेगा, जब तक हम मनुष्य दूसरे को अपने विचारों का स्वामी बनाते रहेंगे तब तक यह विनाश अनवरत बहता रहेगा।

गोकरन ने इस प्रत्युत्तर पर विचलित होते हुए कहा – *ये ज्ञान ध्यान की बातें कौन जाने, हम तो बस इतना ही जानते हैं इसने हमारे साथ बुरा किया वो हमारा शत्रु है।*
अंतर्मन – *यहीं से तो धैर्य की परीक्षा आरम्भ होती है। ये परिवेश, ये ग्रामीण गलियां तो बड़ी सहज और सरल हुआ करती हैं इनमें ये द्वेष ईर्ष्या का स्थान क्या कभी जीवित था?*
बताओ मुझे ये वैमनस्यता थी क्या कभी?
नहीं... क्योंकि मानवीय मूल्यों की सरलता और भोलापन ही तो यहाँ की आकृति हुआ करती थी किन्तु अब ये कैसा परिचय गढ़ने जा रहा है?
तुम एक बार भी नहीं सोचोगे।
तुम्हारे इस संवाद से प्रतीत होता है कि इस सहजता पर

डाह लगाए बैठे लोगों को आंशिक ही सही किन्तु सफलता मिलनी आरम्भ हो गई है।
फिर भी स्मरण रहे माटी कभी पत्थर नहीं हो सकती और तुमसे भी यही आशा है। अन्तिम बात स्मरण रखो तुम भले स्वीकार करो न करो किन्तु ये अटल सत्य है कि मनुज के हेतु मनुज ही मरते हैं।

तिलमिलाता अपने हृदय की दग्ध अग्नि से उद्विग्न होता गोकरन चीख पड़ा -

बस करो! बस! मुझे नहीं निभानी, मानवता....
न कोई आदर्श बनना है। मैं भी इसी गाँव का भाग हूँ, जहाँ की माटी सख्त हो चुकी है, इसके पसीजने की प्रतीक्षा बुलबुले समान है और किस आदर्श की बात करती हो तुम? जब इसी चबूतरे पर तिरस्कार की आंधी मेरे पिता के जीवन को उड़ा रही थी, तब क्यों कोई मानवता उस आंधी के समक्ष आके नहीं खड़ी हुई?
क्यों कोई हाथ उस जिह्वा में गांठें न लगा पाए?
जब-जब मैंने अपने भविष्य को रोटी देने का प्रयास किया तब यही तुम्हारा मानवीय समाज मेरे पैरों की बेड़ियाँ बन खड़ा हो गया तब क्यों कोई आदर्श इन बेड़ियों को काटने नहीं आया, आज अपने नौनिहालों को अन्न के लिए बिलखता देखता हूँ तो घृणा होती है इस मानवता नामक शब्द से, घृणा होती है अपनी जाति से, इस समाज से।
मुझे नहीं बनना धर्मात्मा! नहीं है कोई कर्त्तव्य, मानवता!
सब ढकोसले थे....यहाँ सब पहले ही मर चुका है...
अब लाशों पर जलसिंचन करने से क्या लाभ?
अब कोई संवाद नहीं... कोई आन्तरिक द्वन्द्व नहीं...
तुम मरी हुई मानवता में कितनी भी सांसें फूंको
ये जीवित नहीं होगी।

मस्तिष्क की दलीलों पर कुठाराघात करते हुये आत्मा ने फिर हुँकार भरी –

यदि मानवता में श्वासें न होती तो आज उस अन्न को
छोड़ तुम यहाँ क्यों आते....
जिसके लिए तुम सब कुछ करने को सज्ज हो गये थे।
तुम्हारा यहाँ आना ही प्रमाण है.....
तुम्हारे संस्कारों की धरती पोली नहीं थी।

देह की तीव्र होती ज्वाला को संयमित कर क्रोध भरे अश्रुओं को समेट बिना किसी तर्क के गोकरन अपने घर की पगडण्डी की ओर उठकर जाने को सज्ज हो गया ।

एक प्रचण्ड आंधी ने एक तेज पुँज का निर्माण कर उसके कांधे पर जनेऊ बनकर बैठे पिता को जैसे कुछ क्षणों को मानवी रूप दे दिया हो, मानवी आकृति में ढला वो तेज पुँज गूंज उठा –

सत्य है ! अब हल्केराम का अंश भी यहाँ जीवित नहीं!!
इस भू पर पड़ी उसकी ठठरी का
अन्तिम राख कण... विलुप्त हो चुका है.........
विलुप्त हो चुका है......... विलुप्त हो चुका है!
सत्य है हल्केराम मर चुके हैं !
साथ में संस्कार, कर्त्तव्य, धर्म, दया करुणा, स्नेह...
सब मर चुके हैं !कांधे पर लहराता ये प्रकाश....
सूत मात्र रह गया है.... सत्य है हल्केराम मर चुके हैं !

गोकरन ने पलटकर उस तेजपुँज पर जैसे ही दृष्टिपात् किया एक तीव्र ध्वनि के साथ वह मानवी तेजपुंज विलुप्त हो गया। गोकरन के कानों में गूंजती इस ध्वनि ने उसके भीतर के सभी वाद–विवादों पर विराम लगा दिया और उसके पग स्वयं ही लिखनी कक्की के घर की ओर मुड़ गये।

॥20॥

दोपहर होने को आई गोकरन अब तक घर नहीं आया था, सिन्धु दसों बार गली के छोर तक देखकर आ चुकी थी किन्तु गोकरन का कुछ पता नहीं चल रहा था, उधर मुनिया की हालत भी बिगड़ती जा रही थी, सबेरे से पचासों दस्त हो चुके थे साथ में खून भी ज्यादा आने लगा था, डॉक्टर के पास भी हो आई थी सिन्धु लेकिन कोई आराम न मिला, डॉक्टर ने तुरन्त बड़े अस्पताल ले जाने की सलाह दी थी लेकिन गोकरन तो अब तक घर नहीं आया था।

अस्पताल जाए तो कैसे जाए? घर में एक पैसा भी नहीं। आखिर करे तो क्या करे? किसके सामने झोली फैलाए इस गाँव में अब सहानुभूति के चन्द साथी तो थे लेकिन कोई किसी की पीड़ा का सहयोगी नहीं रहा था।

व्याकुल सिन्धु इधर से उधर भागती फिर रही थी। गोकरन के बारे में सबसे पूछती फिरती लेकिन उसकी किसी को कोई खोज खबर नहीं थी। तभी सिजिया ने जोर से आवाज दी –

अरी ओ जिजी,
गोकरन महाराज तो लिखनी कक्की के गाड़े पे
भिन्ने खें धरें लएं जात ते,
पानी भरन गई ती तब देखो तो मैंने।

सिन्धु के ऊपर मानो वज्रपात सा हो गया हो, ये वही भिन्ने था जिसके कारण आज उसके बच्चे अन्न के दाने-दाने को तरस रहे हैं, जिसके कारण पूरा घर बर्बाद हो गया आज उसी की सहायता के लिए मुझे बिना बताए ऐसे चले गये जैसे मैं कोई नहीं, अपनी सन्तान का मुँह भी न देखा।

सिन्धु को बिलखते घण्टों बीत गये लेकिन गोकरन अब तक नहीं आया, मुनिया ने बार-बार दस्त कर रही थी, इस बार तो खून ही

खून, मुनिया पीली पड़ गई, सिन्धु सारे स्वाभिमान, मान को अरवे में डाल घबराई सिजिया के घर दौड़ी गई–

सिजिया ओ सिजिया!

कछु पैसा हों तो दै दो मुनिया बहुत बीमार है।

सिजिया – *का कहतीं जीजी मोए पास होते तो दै देती।*

पसीने से सराबोर सिन्धु हाथ जोड़ते हुए अनुनय करने लगी–

सिजिया अपने दद्दा से पूंछ लो बहुत जरूरत है,

जल्दी लौटा दै हों।

लेखनीराम भीतर से खांसते हुए चिल्लाया –

अरे! इते कौन खजानो गड़ो, हमाएं नईयां ।

सिन्धु अपने स्वाभिमान को तिलाँजलि दे पूरे गाँव में जहाँ–जहाँ जा सकती वहाँ–वहाँ अनुनय कर आई लेकिन कोई सहायता का हाथ उसकी बच्ची के जीवन डोर को पकड़ने नहीं आया। सिन्धु अपने कटे हाथों को कभी दीवार पर पटकती कभी करम पर बिलखती जाती मुनिया को बार–बार बेल घोल के पिलाती लेकिन जीवन ने तो जैसे बैर ठान रखा हो। आज सारा ब्रह्माण्ड बैरी हुआ जाता है। कैसा निर्दयी हुआ जाता है, जो सांसे छोड़ते इस बचपन को कोई चन्द जीवन के सिक्के देने को भी तैयार नही। ।

मुनिया अचेत हो गई । सिन्धु जी छोड़ उसे गोद में उठाए फिर डॉक्टर के पास दौड़ी गई पीछे से श्रवन माँ की धोती पकड़े भागा जा रहा था।

बड्डे दादा जब खेत से अपने घर पहुँचे तो सिन्धु के आने की खबर लगी, वे उल्टे पाँव गोकरन के घर की ओर चल पड़े, लेकिन जब तक पहुँचे सिन्धु, मुनिया को अस्पताल ले जा चुकी थी। बड्डे दादा भी शीघ्र अस्पताल की ओर निकल गये ।

सिन्धु डॉक्टर के सामने हाथ जोड़ रोती बिलखती गिड़गिड़ा रही थी, हाथ जोड़े दहाड़ें मारती सिन्धु डॉक्टर के पैरों तले गिर पड़ी–

डाक्टर साहब! देख लो मोड़ी खें का हो रहो,
पीरी पर गई, देह ठण्डी जुदी होत जात।

बड्डे दादा भी आ पहुँचे। सिन्धु को ढाढस बंधाते हुए कहा

चिन्ता न कर बहू ठीक हो जै है मुनिया।

डॉक्टर को भी निवेदन किया कि दवा कर दे जो भी पैसा बनेगा वे धीरे-धीरे चुका देंगे।

डॉक्टर ने बच्ची के मुँह में दवा डाली लेकिन जैसे ही दवा मुँह में जाती वैसे ही मलस्थान से निकल जाती। इंजेक्शन लगाए बोतल चढ़ाई लेकिन कोई असर नहीं, सभी युक्तियाँ धराशायी हो गई, होनी से बलवान कौन हुआ है जग में।

गरीबी के घर में मृत्यु भी अतिथि बनकर नहीं कुटुम्बी बनकर वास करती है, अंततः क्रूर काल ने अपनी चाल खेल दी मुनिया चल बसी! सिन्धु माथा पीटती बेसुध हुई जाती थी किन्तु समय किसी का सहचर नहीं होता।

प्रकृति पिघल कर बहने लगे तब भी माता के आँचल पर सन्तान की छूटती श्वासों की वेदना का भार वहन नहीं कर सकती। छाती से अपनी आत्मा की लाश चिपकाए सिन्धु अचेत पड़ी थी।

श्रवन कभी अचेत पड़ी माँ का मुख पकड़ पूछता,

'अम्मा ओ अम्मा! तुम्हें का हो गओ!
अम्मा जिज्जी कित्तो सो है?

कभी मृत काया को हिलाता डुलाता,

'जिज्जी उठो! चलो बाहर खेलन चलें,
आज तो अपन नें रोटी खाई है
फिर काए सो रई जिज्जी उठो! उठो न!

श्रवन अपनी सहोदरी की मृत काया को झकझोरे डालता लेकिन अब उसकी जिज्जी तो अनन्त से झांक रही थी। श्रवन कभी इधर भागता कभी उधर भागता। कभी अपनी अम्मा का मुख देखता

कभी जिज्जी का। कभी प्रश्न करता, कभी माता के विलाप को देख रो पड़ता।

सिन्धु बार-बार बेसुध हो जाती, सहसा चीखने लगती,कभी गोद में समेटे बच्ची को दुलारने लगती, कभी चिल्लाने लगती -

उठ बेटा! आज रोटी बनाई है, खाने नईयां!
चल उठ कि तो प्रान लै लेत ती रोटी रोटी करकें
और आज जब बनाई है
तब दिखो तो जिजी उठत नईयां।
उठ मोरी मुनिया उठत काए नईयां बिटिया,
मोरी प्रानप्यारी उठ बेटा!

सिजिया ने आंसू पोंछते हुए कहा -

जिज्जी का कहतीं मुनिया नईं रही।

सिन्धु के दग्ध नेत्रों के वेग ने सिजिया को पीछे धकेल दिया, अपनी बिटिया की मृत काया को छाती से चिपकाए धरती पर गिर पड़ी।

प्रकाश ज्योतियाँ अस्तांचल हो चली थीं, गोकरन जैसे ही गाँव की मेढ़ पर पहुँचा वैसे ही उसे किसी ने दूर से चिल्ला के बता दिया-

अरे गोकरन महाराज !
कहाँ फिरत हो उते तुमाई मोड़ी नईं रही।

आकाश जैसे अग्नि गुम्बद बन उसके ऊपर आ गिरा हो। समय की गति जैसे ठहर गई गोकरन स्तब्ध खड़ा रहा। फिर एक आवाज आई

अरे गोकरन सुनो की नईं?

गोकरन चेतना में आया गिरता, दौड़ता घर तक पहुँचा कण्डों की आग से छाए धुंए ने मुनिया के जीवन की सारी गाथा कह डाली। माटी की दीवार से चिपका गोकरन पथराया सा बैठ गया।

पिता के कांधे पर नौनिहाल का शव इससे अधिक विदीर्ण करने वाला बोझ तो ब्रह्मा ने भी नहीं बनाया। ये किसी पाप की परिणति थी या पुण्य का फल?

अपनी सन्तान के जीवन के लिए झोली फैलाए फिरती माँ को छूंछे हाथ दिखाते समय सारी संवेदनायें सो रहीं थीं लेकिन अब सारे गाँव की मानवता उस माँ के दरवाजे पर अपना–अपना अश्रुमिश्रित स्वांग करते दिखाई पड़ रही थी।

गोकरन के नेत्रों के सम्मुख एक पथराया पसरा आकाश पड़ा था, अब न कोई संवाद था, न द्वन्द्व। देहरी के भीतर किस मुँह से पग धरे, किसकी शक्ति से सिन्धु का सामना करे। पथराये से गोकरन को उसके गाँव के लोग भीतर ले गये।

सिन्धु ने गोकरन को देखकर कहा –

देखो न हमाई मुनिया
जाने काए पे रिसा गई उठतई नईयां,

गोकरन को पकड़कर झिंझोड़ती जाती लेकिन शिथिल गोकरन सिन्धु के छूने मात्र से धरती पर गिर पड़ा।

लोगों ने गोकरन से लाख बार उठने को कहा लेकिन आज कोई सहानुभूति भरी ध्वनि उसके कर्णपटल पर श्रव्यचित्र नहीं बना पा रही थी।

मुनिया को विदा करने का समय हो गया।
धरा से भारी नन्ही धिया की देह छाती से चिपकाए गोकरन मानवी झुण्ड के साथ चल पड़ा।
मुनिया की सखी ये माटी की गलियाँ जो उसके साथ खेलती थीं, रोती थीं, झगड़ती थीं आज धूल बनी उसके साथ मरघट की साथी बनी उड़ी चलती हैं।
मरघट आ पहुँचा, तिमिर कारा गहन होने चली थी, गोद में सोई अपनी बिटिया को हाथों से पुचकारता गोकरन निर्निमेष उसे निहारे जा रहा था।
लोग उसे सान्त्वना देते हुए कहते – करम लिखो कोऊ नई टारत गोकरन!
बिटिया की अन्तिम क्रिया करो, रात न करो चाहिए।

वेदना भरे नेत्रों में ज्वालामुखी उतर आया, अपने प्राणों को छाती से चिपकाए गोकरन चीख पड़ा –

चले जाओ! सब चले जाओ!
यहाँ अब कौन सा स्वांग रचने आए हो,
अब मेरे सहोदर बनते हो, तब कहाँ थे?
जब ये मासूम बचपन
जीवन के लिए छटपटा रहा था।
नहीं! तुम सब मेरे लिए रिपु सम हो।
तुम्हारे बैर की काली छाया
अब मैं और नहीं सहूँगा।
चले जाओ यहाँ से।
जिन्हें में आज तक अपने अपराध मानकर स्वयं को कोसता रहा वास्तव में वो सब तुम सब का षड़यन्त्र था,
तुम्हारा व्यूह था,
अब मैं तुम्हारे षड़यन्त्रों की भाषा भली भांति पढ़ सकता हूँ,
इसलिए अब और अभिनय की आवश्यकता नहीं,
संवेदनाओं की खाल ओढ़कर
अब और क्या अहित करोगे मेरा...
सब कुछ तो कर चुके......

अपनी छाती से मुनिया का मुख आगे बढ़ाकर कर जोर से चिल्लाया –

देखो! ये देखो! श्वासहीन..... स्पंदनहीन.... मेरा जीवन...
मेरे हाथों में मृत पड़ा है।
नहीं चाहिए मुझे तुम्हारी कुत्सित सहानुभूतियाँ..
स्वांग भरी संवेदनायें।
चले जाओ.... अन्यथा मेरी सन्तान को लेने आये
इस काल के समक्ष मृतकों का समूह खड़ा कर दूँगा,
शीघ्र चले जाओ!....

कहीं ये मानव भेषज ब्राह्मण....
दानव में परिवर्तित न हो जाए!
कहीं आज मैं इस मरघट के लिए
उत्सव का कारण न बन जाऊँ......
उससे पूर्व निकल जाओ यहाँ से।

मतईयाँ बोला –
चलो भाई चलो!
हम तो दुख में भागीदार बनें खैं आए ते
उल्टे हमई औरन खैं गारीं मिल रहीं,
चलो रे सब! जो तो सदा सें ऐसई तेहा वालो रहो है,
अपनो अपमान कराएं थोड़ी आए।
सभी ने स्वीकारोक्ति दी – हाँ सही है,
एक तो हम दुख बटाउन आए
ऊपर सें हमई खें बुरो भलो बकत,
भलाई को तो जमानो नई रहो भइया।
चलो रे, मरन दो ससुर खैं
का करनै अपन खैं, जो चाएं करै।

धीरे-धीरे पिता पुत्री की वेदनाओं को एकान्त प्रदान कर सब चले गये। मरघट की शान्ति में वेदनायें कोलाहल कर गूँज उठीं।

गोकरन कभी चिरनिद्रा में सोई मुनिया के मुख को झकझोरता कभी उसकी नर्म मुट्ठियों की शीतलता को रगड़ता जा रहा था, कभी उसके मुख के पास कान ले जाकर कहता,

बोल बेटा! का कह रही सुनात नईयां
जोर सें बोल मोरी बिटिया रानी! मोरी लाडो!
इस सन्नाटे में तेरा मौन
ये कैसी निर्जीव कहानियाँ गढ़ रहा है,
बोल मेरी बच्ची!
मेरे अनुत्तरित प्रश्न व्याकुल हुए जाते हैं।

अपने कोमल नन्ही हथेलियों से अपने बाबू के कपोलों
पर लहराते इस जल को नहीं पोछेगी,
कैसी हठी बन सो रही है।
अब तुझे अन्न की याचना नहीं करनी होगी,
हाँ....ठीक है.... अब मैं गंगा उठाता हूँ कि
तेरी हर अभिलाषा पूरी करूंगा.... अब तो उठ जा बेटा!
तेरी अम्मा कैसे जीयेगी.. यही सोच के उठ जा बिटिया!

यकायक पवन आकार लेकर गोकरन के कांधे पर हाथ धरे खड़ी हो गई –

बाबू ओ बाबू! ये किसे दुलारे जाते हो?
मैं तो यहाँ हूँ ही नहीं।
मैं तो अब अनन्त की अंक में सो रही हूँ।
तुम रोना मत बाबू वरना मैं भी सुख से नहीं रहूँगी।
अब मेरे सभी बाल्य आलिङ्गन तुमसे विदा मांगते हैं,
तुमसे सदा के लिए बिछुड़ने की आज्ञा मांगते है,
मुझे विदा करो मेरे बाबू! मुझे विदा करो!

बाबू! अब तो मैं देव चरणों में चढ़ा पुष्प हूँ जो अब
अपनी डाली से कैसे जुड़ सकता है, अब मैं नहीं लौट
सकती,
बाबू! जाने दो मैं फिर आऊंगी पर अब सौगंध लो कि
मुझे अन्न की अभिलाषा लिए न जाने दोगे,
मुझसे अब अन्न का विलाप नहीं सहा जाता
इसीलिए विदा करो।

प्रतिबिम्ब के आलिङ्गन की चेष्टा करता गोकरन बिलखकर चिल्लाते हुये धरती पर मस्तक पटकने लगा –

नहीं प्राणजाया! मैं तुझे नहीं जाने दूँगा....
तेरे जाने से मैं आत्महीन हो रहा हूँ,
मेरी बच्ची लौट आ! मुझे नहीं अर्पित करना...

मेरे जीवन का पल्लवित होता प्रसून,
हे देव! लौटा दो,
अन्यथा अपने नखों से नोंच लूँगा तुम्हारे भाल को।
बधिर हो गये हो क्या? विधाता!
जो इस नवपल्लव का क्रन्दन भी न सुनाई दिया तुम्हें?
मेरी लाडली!
मुझे पता होता कि तू मेरे जीवन यज्ञ की आहूति होगी
तो पहले ही तिरोहित कर डालता स्वयं को।

अंधकार भरे आकारों ने गोकरन को चारों ओर से घेर लिया देव सृष्टि का ध्वंस फिर श्वास लेने लगा, गगनभेदी क्रूर काल का अट्टाहस गूँजने लगा, मतईयां, महली, सुबीतेसिंह, भिन्ने, सौधी, लिखनी, लेखनीराम, सिजिया के क्रूर व्यंग्य करते मुख उसके चारों ओर बिम्बित हो उठे जैसे पूरा समाज उसको घूर रहा था हंस रहा था –

हा.... हा.... हा.... हा....
बम्हना, ब्राह्मण.... हा.... हा.... हा.... हा.....
जनेऊधारी...... हा.... हा.... हा.... हा.....
और आकाश छूने की अभिलाषा है? बोल?
और यश, कीर्ति, वैभव की कल्पना करेगा?
जब-जब ऐसा करेगा....
हम यही परिणाम लेकर तेरे समक्ष चट्टान बने खड़े रहेंगे
मिटा देंगे तेरी हस्ती को।
हा.. हा.... हा.... हा...
कर्त्तव्य.... धर्म.... नियम.... हा.... हा.... हा.... हा....
अब यही तेरी नियति है मर! तू मर!

विलाप मूर्छित होकर गिर पड़ा, अंधकार में सारी आभायें लीन हो गईं। आकाश ने धरती की गोद कोमल करने के लिए जलसिंचन आरम्भ कर दिया। प्रलय निशा का कोलाहल जड़ हुआ मूर्च्छित पड़ा था, आकाश की बून्दों ने मूर्च्छित विलाप को जगाकर ढाढ़स दिया।

स्वयं को समेकित करता गोकरन बोला –

आ मेरी दुधमुँही प्राणजा!
तुझे क्षण भर अपने अंक में भर लूँ!
तेरा आलिङ्गन कर लूँ फिर तुझे विदा देता हूँ।
मैं पापी हूँ.... हत्यारा हूँ..... श्राप हूँ.....
फिर भी मुझे क्षमा करना।

पवन वेदना आप्त शब्दों को पी–पीकर और शुष्क हुई जाती थी, नवजीवन की विदाई की बेला आ गई थी। गोकरन ने अपने गोदी के पुष्प को मही के अंक में अर्पित करते हुए कहा –

हे मृत्यु! हे चिरनिद्रा! हे महीतल!
तुझसे करबद्ध निवेदन है
अपनी अंक को और शीतल कर लेना
और ज्यादा कोमल कर लेना
मैं मेरा प्रथम वरदान
मेरा गोदी का नन्हादान
तुम्हें अर्पित करता हूँ,
जो कोमल छाया मैं इसे न दे सका
तू अवश्य देना।

सहसा विलाप ने क्रोध का आकर ले कांधे से चिपके जनेऊ को तोड़कर पृथक् कर दिया, श्वेत तड़तड़ाती तड़ित दामिनी झंकृत हो उठी। आकाशमुखी हो गोकरन की वेगवान् ध्वनि गूँजने लगी

मुझे अब कुछ नहीं डरा सकता,
ये लो नहीं चाहिए ये ब्राह्मणत्व!
इस जनेऊ के हर धागे के साथ
इसके कर्त्तव्य, दया, करूणा, प्रेम, धर्म, शुचिता
सब कुछ तोड़ता हूँ!
अब न वेदना होगी, न कोई कर्म।
मेरी लाडो! आज मैं तेरे साथ

इस जनेऊ की अन्तिम क्रिया करता हूँ,
तेरे साथ इस श्वेत ग्रन्थि धर्म का
अन्तिम स्नान करता हूँ।
अब तुम कभी मेरे पैरों में मानवता, दया, कर्त्तव्य
जैसी अकाट्य बेड़ियां नहीं डाल सकोगे।

अश्रु वाष्प में अवतरित होकर बादलों में प्रलय मचाने लगे। कल तक माटी से खेलने वाली मुनिया माटी में लीन हो गई।

बिटिया की माटी में नहाया गोकरन चेतनाहीन सा हवा के साथ बहता चला गया, जैसे कृष्णपक्षी गहरी रात का अनुसरण कर रहा हो। रात भर आसमान विलाप करता, अपने अश्रुओं से नौनिहाल के विसर्जन के लिए इस कठोर धरा को कोमल करता रहा।

आंसू बहाती रात अपनी गति से चली जा रही थी और गोकरन अपनी, मानो अपनी मृत देह का अन्तिम संस्कार करने स्वयं जा रहा हो, बस चला जा रहा था जहाँ अन्धेरा उसे लिए जाता।

छपरे में गाँव के अनेक घरों से आए अन्न से रसोई के खाली पड़े, बर्तन भर चुके थे, श्रवन कभी पूड़ी उठाता, कभी रोटी सब्जी, अचार सब कुछ था। श्रवन पूरियां खाते जाता और अपनी अधतोतली भाषा में सिन्धु से प्रश्न करता जाता –

अम्मा! जिज्जी को पापा कहाँ लिवा गये?
देखो आद अपने धर में तित्ती बिलात ओटी है,
पूड़ी है, और अम्मा तलकारी देखो, अचार भी है।

सिन्धु बिना कुछ कहे अपनी गोद में बैठाकर श्रवन के भाल को चूमती आँखों से गंगा बरसाती उसे अपने हाथों से खिलाने लगी। सिन्धु सोच ही रही थी की सिजिया की आवाज आई –

जिज्जी ओ जीजी....

सिन्धु ने वहीं से आवाज दी – *का है?*

सिजिया – *जो चून ल्याए ते और थोड़ी दाल है।*

कैसी विडम्बना थी जो नौनिहाल अन्न के लिए दिन रात तड़पती रही, जिस अन्न की सुगन्ध तक उसके लिए दुष्कर हो गई थी, जो रोटी...रोटी करती मर गई, आज उसी की मौत के उपलक्ष्य में पूरे गाँव से अन्न की सौगात आई है।

भोर हो चुका था, प्रकृति ने अपनी तूलिका से आकाश को रंगों से भर दिया, आज मुनिया को गये पखवारा बीत गया था, इतने दिनों से गोकरन को न घर की सुध थी न ही स्वयं की बस भटक रहा था। सिन्धु भी श्रवन को छाती से चिपकाए बेजान गुड़िया सी घर में पड़ी रहती, गोकरन के आने की राह देखती रहती।

देवी के मन्दिर में आज भजन पूजन का कोलाहल बिखरा हुआ था, देवी के पिछले बरामदे में बेसुध पड़े गोकरन को बार-बार कोई हिला रहा था, पानी डालकर उसकी चेतना को जाग्रत करने का प्रयास कर रहा था।

गोकरन की चेतना लौटी तो देखा चारों ओर भजनों की आवाजें गूँज रही थीं, सुगन्धित पवित्र धुएं से सारा वातावरण सुगन्धित हो उठा था। गोकरन को आज पंद्रह दिन बाद अपनी स्थिति का भान हुआ था।

पखवारे भर अपनी नौनिहाल की मौत को सीने से लगाए न जाने कहाँ से कहाँ भटकता रहा आज जब उसके नेत्रों और हृदय ने किवारे खोले तो माता का मन्दिर और पिता के चबूतरे ने उसे आलिङ्गनबद्ध कर रखा था, चारों ओर भक्ति भरा संगीत नृत्य कर रहा था। उसके पीछे खड़े अपरिचित लोगों का एक झुण्ड चर्चा कर रहा था-

अरे भइया! सुनो ई गाँव के मतईयाँ ने
आतमहत्या करबे की कोसिस करी,
बो तो किस्मत साजी हती कि बच गओ।
का कही? कैसें? ऐसो का हो गओ तो?
'कुर्की हो गई, लरका जेहल चलो गओ,
मतईयाँ महली के सुबीते सिंह के हाथ पांव जोरत फिरत
रहो लेकिन एक न सुनी, कहाँ-कहाँ नईं गओ।'

हाँ भइया! बैंक को कर्जा नईं चुका पाओ,
खेती लौ गिरवी कर दई ती महली के इते फिरऊं कछु नईं हो पाओ।
काए छुट्टन ने कौनऊ मदिद न करी का?
न कहो भइया जब बुरए दिन आउत तो एक संगे पटपटा कें गिरत।
(फुसफुसाते हुए)
कौनऊ केस कर दओ सो जेल चलो गओ।
'भइया कुछ भी कहो, अब गाँव की सहज गलियां भी उलझ गई हैं, सही गलत नहीं पहचान पातीं
जिसने उन्हें थोड़े से स्वप्न दिखाए उसी का पीछा करने लगती हैं और वो स्वप्नदाता ही आज इन्हें ऐसे दलदल में धकेल रहा है, जहाँ से लौटना असम्भव सा है,
अब तो कोई ये कहने वाला भी नहीं दिखता कि
गाँव की मासूमियत पर रहम कर दो,
अपना भला बुरा स्वयं समझने दो, पहले आदमी चाहे कितनी भी पीड़ा में रहे लेकिन हृदयों से प्रेम विलुप्त नहीं होने पाता था लेकिन आज देखो गाँवों के पवित्र वायुमण्डलों में घृणा की हवा छोड़ दी गई है।
कोई किसी को एक आँख नहीं देखता, प्रेम, त्याग, बलिदान जैसे भाव न जाने किस सूखे कुएं में मरे पड़े हैं।

हल्केराम का स्मरण करते हुए झुण्ड के एक अन्य व्यक्ति ने कहा –

आज हल्के महाराज होते तो जो न होन पातो,
मतईयाँ खैं जो कदम उठाबे की नौबत न आती
और चाहे जो हो जातो, अपने प्रेम सें इतनी हिम्मत तो बंधाए राखत ते सबकी कि आफत बिपद परें पे
आदमी जान न हारे, जब बिपद परत तो सहारे के दो बोल अमृत से काम करत और हल्के महाराज जैसे महात्मा तो

आज के जुग में लगत होबो बन्द हो गए भइया।'
सभी ने सहमति में सिर हिलाते हुए कहा –
'हओ भइया! इसुर कभऊं कभऊं
ऐसे देवता भेजत धरती पे लेकिन हम औरें उनई को मान नई कर पाउत।'
'जीवन में कितने कष्ट देखे पै अपने धर्म सें कभऊं न डिगे, आज होते तो उनके चरनन की रज लै लेते।'
'अभे उनकी बंसबेल तो है, समझ लो बेई आएं हमाए बीच में, काए भइया हरो?'
'हाँ सही कहत हो, हल्के महाराज को जो मन्दिर ऐई सें जाग्रत है, अब देखो तो कित्ते जने आउन लगे
नई तो खण्डहर डरो रहत तो।'

ये पूरी चर्चा गोकरन के लिए जैसे मृतसंजीवनी बन के आई थी, गोकरन जिस धर्म को दफना आया था वो जीवित सा प्रतीत होने लगा। अपने पिता को लोगों के हृदयों में जीवित पाकर उसके समस्त प्रश्नों के उत्तर मुखर हो उठे, ऊर्जायें बलवती हो चलीं, भाल गौरव से चमक उठा, ब्राह्मणत्व के गर्व से छाती फूल गई।

किन्तु सहसा अपने नंगे कांधे को देख गोकरन सहम गया, वो तो अपने परिचय को ही तिरोहित कर आया है, दुख के थपेड़े ने उसे इतना बलहीन कैसे बना दिया? उसको ताकती देवी जैसे कह रहीं हों–

उठो, योग्यता, प्रेम, कर्म, करूणा विचलित अवश्य हो सकते हैं किन्तु ज्वालामुखी की अग्नि में भी भस्म नहीं हो सकते।

जिजीविषा कभी परास्त नहीं होती, फिर चाहे...
ये समाज, विश्व या फिर पूरी सृष्टि ही क्यों न एकपक्षीय होकर खड़ी हो जाए,
जब तक श्वास मालायें होती हैं... जनेऊ तब तक धर्म धारण करता है।

तुम स्वयं में धर्म को मार सकते हो लेकिन वो कभी नहीं मरता।
मनुष्य माने या ना माने वो तो सृष्टि के विनाश के बाद भी जीवित रहता है।
अपने धर्म को धारण करो! उठो और बढ़ो!
जब-जब संसार तुम्हें ठोकर मारे...
तुम उतनी ही शक्ति से चल पड़ो और अपने लक्ष्य पर सीनाताने खड़े हो जाओ... मेधाओं को मत मरने दो....
अपने कर्त्तव्य को श्वांस दो और चल पड़ो....
मार्ग स्वयं बनते जाऐंगे।

आकाश की धरती स्वच्छ हो गई और उस निरभ्र गगन में सप्तरंगी जनेऊ चमक उठा।

गोकरन ने अपने सम्मुख प्रसाद और जनेऊ का दान लिए खड़े यजमान के हाथों से जनेऊ धारण किया, माता-पिता के पदचिह्नों को पाथेय बना कांधे पर जनेऊ, हाथ में नवीन पीढ़ी का हाथ और कर्मयुद्ध की शपथ लिए एक नवीन पथ पर, नवीन ऊर्जा लिए, नए स्वप्न गढ़ने, कुरुक्षेत्र की ओर बढ़ चला।

॥ इति ॥